Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

१०

श्रीभर्तृहरिविरचितं

नीतिशतकम्

'विमला'-'सुधा'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

डॉ० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी

भू० पू० प्राध्यापक एवं अध्यक्ष

संस्कृति, भूगोल विभाग

कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

R1;9,1
15224

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

R1; 8,1 83<?>4
152L5

Tripathi, Shrikrishna mani

Nitisatakam

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

R1:9,1
152L5

8384

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

R1; 9,1
152L5

83384

Tripathi, Shrikrishna mani

Nitisatakam

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

-श्री गुरुभ्यो नमः

भर्तृहरिविरचितं

नीतिशतकम्

'विमला'-'सुधा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

-श्री शिवलिंग शिवाचार्यस्वामीजी बेळंकी.

व्याख्याकारः

डॉ० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी

भू० पू० प्राध्यापक एवं अध्यक्ष

पुराणेतिहास, संस्कृति, भूगोल विभाग

श्रीसम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३३३४३१

सर्वाधिकार सुरक्षित

संस्करण १९९७

मूल्य २०-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

*

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३२०४०४

मुद्रक

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

10

Belanki Maharaj

NĪTIŚATAKA

OF

BHARTṚHARI

Edited with

'Vimala'-'Sudha' Sanskrit & Hindi Commentaries

By

Dr. Shrikrishnamani Tripathi

Former Professor & Head of the Deptt. of

Purana, History, Culture & Geography

Sri Sampurnananda Sanskrit Vishwavidyalaya, Varanasi

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. ....

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

© CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(*Oriental Publishers & Distributors*)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
VARANASI 221001

R1:9,1
152L5

Also can be had of
CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
Telephone : 236391

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 8364

Sole Distributors
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भूमिका

संस्कृत भाषा विश्व की भाषाओं में सबसे प्राचीन तथा श्रेष्ठतम भाषा है। इसका साहित्य अत्यन्त समुज्ज्वल, समृद्ध एवं विशाल है। संस्कृत-साहित्य भारतीय संस्कृति का निर्मल दर्पण है, जिसमें भारतीयों के सर्वाङ्गीण विचार स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हैं। संसार में संस्कृत ही एक ऐसी भाषा है, जो मानव-जीवन को सर्वविध समुन्नतशील बनाने के साथ-साथ प्राणीमात्र को मङ्गलमय कल्याण की ओर अग्रसर करने में निरन्तर प्रयत्नशील रही है। इसकी मधुरता, प्राञ्जलता एवं भावुकता तथा इसके सन्देश "सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तुः", "वसुधैव कुटुम्बकम्" आदि से समस्त विश्व इस पर मुग्ध है—इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखता है तथा इसकी अभ्युन्नति के लिए सतत प्रयत्नशील है। सर्वमान्य वेदों के अति रहस्यमय ज्ञान से लेकर सामान्य जनजीवन के मनोविनोद से सम्बन्धित हितोपदेश की कथाओं तक जितना भी साहित्य-वैभव विद्यमान है, वह सब संस्कृत भाषा में सुरक्षित है। इस प्रकार संस्कृत भाषा का साहित्य अति विशाल, अनुपम, महत्त्वपूर्ण और सर्वाङ्गीण है।

संस्कृत-साहित्य का काव्य-क्षेत्र दो भागों में विभक्त है। एक दृश्यकाव्य और दूसरा श्रव्यकाव्य। इसमें दूसरे श्रव्यकाव्य के तीन उपभेद है—(१) पद्य-काव्य, (२) गद्यकाव्य और (३) चम्पू। इन तीनों में भी पद्यकाव्य के पुनः तीन उपभेद माने गये हैं—महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा गीतिकाव्य। महाकाव्यों में लोकप्रसिद्ध ऐतिहासिक महापुरुषों के चरित्र-चित्रण के साथ-साथ अनेक प्रासङ्गिक विषयों का भी वर्णन रहता है। खण्डकाव्य में जीवन की एकदेशी-यता रहती है। इसमें आद्योपान्त एक ही कथानक का एकदेशीय विवेचन रहता है, भले ही वह धार्मिक विषय हो या नैतिक अथवा शृङ्गारिक। गीतिकाव्य के अन्दर मुक्तककाव्य और प्रबन्धकाव्य आते हैं। मुक्तककाव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें एक ही पद्य में किसी रस की पूर्ण अभिव्यक्ति रहती है, या किसी अत्युपयोगी विषय का चित्रण रहता है। इसका प्रत्येक पद्य स्व-तन्त्र होता है, जिसको समझने में पूर्वापर प्रसङ्ग की अपेक्षा नहीं होती। मुक्तकों में पदलालित्य, अर्थगाम्भीर्य एवं दृष्टान्त आदि हृदयग्राही होते हैं। इनके प्रति-पाद्य विषय मानव-जीवन का कोई आवश्यक पक्ष—नीति, शृङ्गार एवं वैराग्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आदि होते हैं। मुक्तककाव्य के उदाहरण योगिराज भर्तृहरि के तीनों शतक हैं। अमरुकशतक भी इसी कोटि की रचना है। इनके पूर्व में कालिदास का शृङ्गारतिलक भी लोक में प्रसिद्ध हो चुका था।

भर्तृहरि का समय—भर्तृहरि के अनुज विक्रमादित्य से सम्बद्ध कथाओं का एक संग्रह सिंहासन-द्वात्रिंशिका या द्वात्रिंशत्पुत्तलिका में सुरक्षित है और विक्रमाङ्कदेवचरित से भी इनके जीवन पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है, किन्तु भर्तृहरि के चरित के विषय में लोकप्रसिद्ध दन्तकथाओं एवं विदेशी यात्रियों के लेख के अतिरिक्त कोई भी प्रामाणिक आधार उपलब्ध नहीं होता। इस प्रकार योगिराज भर्तृहरि के स्थितिकाल का निश्चयात्मक ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है। अतः विभिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं।

यदि लोकप्रसिद्ध जनश्रुति के आधार पर राजा भर्तृहरि को विक्रमादित्य का बड़ा भाई मान लिया जाय, जिन्होंने ६४४ ई० में कहरूर की लड़ाई में हूणों को पराजित किया था, तो उनका समय छठी शती का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।

यदि इत्सिङ्ग के निर्णयानुसार बौद्ध भर्तृहरि को शतकत्रय का निर्माता मान लिया जाय, तो इनका समय ईसा की सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। ईसा की सातवीं शती के अन्त में वर्तमान अमरुक कवि द्वारा निर्मित शतक के पद्य भर्तृहरि के शृङ्गारशतक के पद्यों से विशेष प्रभावित हैं। अतः भर्तृहरि का समय ७०० ई० के अमरुक कवि से कुछ पहले का होगा। इसके अतिरिक्त भर्तृहरि को अमरूक का समसामयिक मान लेने पर भी भर्तृहरि का समय छठी शती का उत्तरार्द्ध निश्चित किया जा सकता है।

भर्तृहरि की कृति—योगिराज भर्तृहरि की कृतियों का अन्वेषण करने पर पता चलता है कि इन्होंने 'भर्तृहरिशतक' नाम से एक मौलिक कृति का निर्माण किया था, जिसमें तीन शतक हैं—नीतिशतक, शृङ्गारशतक तथा वैराग्यशतक। ये भर्तृहरि वाक्यपदीय के भी रचयिता माने जाते हैं। वाक्यपदीय भी तीन खण्डों में विभक्त है। भर्तृहरि की कृति वाक्यपदीय में व्याकरणशास्त्र के दार्शनिक सिद्धान्तों का पद्यों में मार्मिक विवेचन है। इसके अतिरिक्त महर्षि पतञ्जलि के महाभाष्य के कुछ अंशों पर भर्तृहरि के टीका लिखने का यत्र-तत्र संकेत प्राप्त होता है। इस प्रकार भर्तृहरिशतक, वाक्यपदीय और महाभाष्य की टीका—ये इनकी कृतियाँ हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भर्तृहरिशतक—भर्तृहरि के तीनों शतक विभिन्न छन्दों में लिखे गये हैं। सिद्धान्ततः तीनों शतक सौ-सौ श्लोकों में लिखे गये थे, किन्तु धीरे-धीरे इधर कई कवियों ने अपने नीतिविषयक, श्रृङ्गारमय और वैराग्य सम्बन्धी पद्यों को मिलाकर शतकों की पद्यसंख्या अधिक कर दी है, जिससे शतकों का वास्तविक मूलपाठ का निर्द्धारण करना कठिन कार्य हो गया है। प्रकाशित प्रत्येक प्रति में भिन्न भिन्न पद्यों के दर्शन होते हैं। किसी भी प्रति में पद्यों की दृष्टि से समानता नहीं है। इसी प्रकार पद्यों में यत्र-तत्र परिवर्तन भी प्राप्त होता हैं।

इसी आधार पर कुछ समालोचक इन पद्यों को एक व्यक्ति की कृति न मानकर इनको सुभाषित ग्रन्थों से संगृहीत मानते हैं। इसके अतिरिक्त इन शतकों में अन्य कवियों की प्रसिद्ध कृतियों के भी अनेक पद्य उपलब्ध होते हैं, जिससे बड़ी अव्यवस्था उपस्थित हो गयी है।

अतः इसके मर्मज्ञ विद्वानों का कर्त्तव्य है कि भर्तृहरिशतक के मुद्रित उपलब्ध सभी संस्करणों का और प्राचीन हस्तलेखों का सङ्कलन कर उनका तुलनात्मक अनुशीलन किया जाय। जो पद्य सभी संस्करणों में तथा पाण्डु-लिपियों में प्राप्त हों, उनको खोज निकाला जाय। सम्भवतः इस प्रकार के प्रयास से मूलपाठ का अनुमान लगाया जा सकता है।

योगिराज भर्तृहरि की सभी कृतियाँ अपने-अपने स्थान पर अद्वितीय हैं। जिस प्रकार इनके वाक्यपदीय के तीनों काण्ड वैयाकरणों के लिए आदर्श हैं, उसी प्रकार भर्तृहरिशतक के तीनों शतक मुक्तक-काव्य-जगत् में अनुपम हैं। इन तीनों शतकों में वैराग्यशतक इनकी सर्वोत्तम कृति है, जिसमें सांसारिक सुखों की अस्थिरता तथा मानवीय जीवन की दुःखमयता का प्रभावोत्पादक चित्रण हैं। तदनुसार सन्तोष को परम धन एवं वैराग्य को इसका साधन माना गया है। श्रृङ्गारशतक भर्तृहरि के यौवनोल्लास का उद्‌गार है। इसमें श्रृङ्गार का उद्दाम-विलास चित्रित है। इसके प्रसंगों में काम की विभिन्न स्थिति, युवक-युवतियों की विविध प्रणयक्रीडा, स्त्रियों के हाव-भाव, कटाक्ष एवं श्रृङ्गारिक चेष्टाओं का हृदयस्पर्शी वर्णन है। नीतिशतक तो व्यावहारिक उपदेशों का भण्डार ही है। इसमें अङ्कित पद्य इतने मार्मिक, यथार्थ और अनुभूति-प्रधान हैं कि वे तत्काल हृदयङ्गम होकर अध्येताओं को कल्याण-पथ पर प्रवृत्त करने की प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार भर्तृहरि के तीनों शतक गीति-काव्यों में स्थान पाने योग्य हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नीतिशतक की विशेषता—नीतिशतक के प्रायः प्रत्येक पद्य में नैतिकता का उल्लेख है। जिसमें योगिराज भर्तृहरि ने लौकिक-व्यवहार के ज्ञान का स्वाभाविक शब्दों में सूक्ष्म विवेचन करते हुए उत्तम से उत्तम उपदेश दिये हैं तथा सद्गुणों को ग्रहण करने का आग्रह किया है, जिनके अनुशीलन में सबका कल्याण निहित है।

योगिराज ने नीतिशतक के पद्यों में सन्तोष करने का उपदेश, विद्या की प्रशंसा, चाटुकारों का स्वभाव, विवेकहीन पुरुष का पतन, धन, भाग्य, महापुरुष एवं सत्संगति की महिमा, आत्मगौरव का निर्देश, सत्पुरुषों के असि-धारा व्रत, शील स्वभाव का प्रदर्शन और मानव-कल्याण के सर्वमान्य मार्ग आदि का प्रभावोत्पादक चित्रण किया है।

इसके अतिरिक्त स्वजनों पर उदारता, सेवक आदि परिजनों पर दया, दुष्टों से दुष्टता, सुजनों से प्रीति, राजपुरुषों के साथ नीति, विद्वानों के साथ नम्रता और शत्रुओं के साथ वीरता का व्यवहार करने वाले लोगों पर ही संसार टिका हुआ है। जो ऐसे व्यवहार में निपुण हैं, उनका अवश्य कल्याण होता है। दैनिक जीवन के प्रत्यक्ष सत्य का भर्तृहरि ने नीतिशतक में हृदय-ग्राही वर्णन किया है। इस प्रकार नीतिशतक में उपदिष्ट भर्तृहरि की नीति, अनुभवजन्य उपदेश के वास्तविक उदाहरण मानवमात्र के कल्याण करने में अत्यन्त उपयुक्त हैं।

भर्तृहरि की काव्यकला—भर्तृहरि की काव्यकला अनुपम है। शैली की रोचकता, भावों की उदारता, शब्दों का विन्यास एवं उक्ति-वैचित्र्य आदि काव्य-कौशल की दृष्टि से इनका काव्य अत्यन्त रोचक एवं उपदेशप्रद है। इनकी शैली बड़ी रोचक है, उसमें माधुर्य, ओज, प्रवाह एवं पद-लालित्य प्रचुरमात्रा में दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी भाषा स्वाभाविक और भावग्राही है। इनके पद्यों को पढ़ते-पढ़ते ही तात्पर्य व्यक्त हो जाता है। इनकी वाक्य-योजना सीधी-सादी और प्रभावशालिनी है। इनके पद्यों में प्रायः दीर्घ समास का अभाव है। इनके शतक प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से ओतप्रोत हैं और इनका वर्णन स्वाभाविक एवं प्रसङ्गोचित है।

इनके शतकों में छन्द तथा अलङ्कारों का चयन भी बड़े कौशल के साथ किया गया है। छन्दों में वसन्ततिलका, शिखरिणी, उपजाति एवं स्रग्धरा का तथा अलङ्कारों में उपमा, रूपक, दृष्टान्त, स्वभावोक्ति और अतिशयोक्ति का बाहुल्य है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भर्तृहरिशतक भावपक्ष और कलापक्ष दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है, फिर भी इसमें कलापक्ष की अपेक्षा भाव की ही प्रबलता है। भर्तृहरि ने अपनी कृति में मानवजीवन के विविध पहलुओं का यथार्थ चित्रण करके भाषा, भाव, छन्द एवं अलङ्कारों पर पूर्ण अधिकार कर लिया है। इस प्रकार भावसौष्ठव, भाषालालित्य, छन्दों एवं अलङ्कारों का समुचित चयन आदि गुणों ने भर्तृहरि के शतकों को अनुपम बना दिया है।

संस्कृत के काव्य-साहित्य में उपदेशात्मक नीति-विषयक सूक्तियों के अन्दर धर्म, दर्शन, सामाजिक सद्भाव, लोक-व्यवहार, सदाचार, राजनीति आदि गम्भीर विषयों का सरल काव्यमयी भाषा में प्रतिपादन है। सूक्तिकारों ने जीवों की अभ्युन्नति को दृष्टि में रखकर सुमार्ग एवं कुमार्ग की भलाई-बुराई का परीक्षण किया है, मनुष्यों की सद्वृत्ति एवं असद्वृत्तियों का विश्लेषण कर सर्वत्र मैत्रीभाव की आस्था को बलवत्तर बनाया है और पुरुषार्थ को सर्वोपरि स्थान दिया है।

ये उपदेशात्मक नीतिकाव्य जिस प्रकार विषय की दृष्टि से विचित्र हैं, वैसे ही उनके अधिकांश निर्माताओं का धर्म-धाम, जन्म-स्थान आदि का इतिहास भी विचित्र है। इसीलिए उन सूक्तिकारों के जीवन पर प्रकाश डालने के लिए किंवदन्तियों का सहारा लेना पड़ता है।

भर्तृहरि के जीवन पर प्रकाश—संस्कृत-साहित्य की परम्परा में लेखकों द्वारा अपनी कृतियों में अपना परिचय न देने के कारण अनेक किंवदन्तियों का सहारा लेना पड़ता है। भास, भारवि, माघ, शूद्रक तथा कालिदास की तरह भर्तृहरि के जीवन के परिचय के सम्बन्ध में भी हमारा ज्ञान अपूर्ण ही है। अतः जनश्रुति के आधार पर ही भर्तृहरि के विषय में कुछ चर्चा की जा रही है।

भारतीय परम्परा के अनुसार भर्तृहरि मालवा प्रदेश के निवासी थे तथा जाति के क्षत्रिय थे। इनका जन्म एक राजघराने में हुआ था। गन्धर्वसेन की दो स्त्रियाँ थीं। एक से भर्तृहरि का जन्म हुआ था और दूसरी मालवा की महारानी धाराधिपति की पुत्री से विक्रमादित्य उत्पन्न हुए थे। धारानरेश का अपना कोई पुत्र न था। अतः उन्होंने स्नेह से विक्रमादित्य के साथ-साथ भर्तृहरि को भी अपने यहाँ रखकर अनेक गुरुओं से धर्मशास्त्र, धनुर्विद्या, नीतिशास्त्र, संगीत आदि की शिक्षा दिलवाई और अपने दौहित्र विक्रमादित्य को अपना राज्य देने का विचार किया, किन्तु विक्रमादित्य ने बड़े भाई के रहते

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वयं राजा बनना स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत प्रयास करके अपने नाना से भर्तृहरि को ही राजा बनवाया और स्वयं उनके मन्त्री बनकर उनका शासन चलाने में सहयोग दिया।

कुछ दिन बाद मालवा की राजधानी धारानगरी से बदलकर उज्जैन हो गयी। राजसत्ता पाकर भर्तृहरि इतना विषयासक्त हो गये कि उनका सारा समय रनिवास में ही बीतने लगा। बार-बार विक्रमादित्य के समझाने पर भी उन्होंने उनकी एक बात भी न सुनी। अन्त में अधिक अनुरोध करने पर रुष्ट हो गये और अपनी प्रेयसी के कहने पर विक्रमादित्य को मन्त्री के पद से हटाकर अपने राज्य से उन्हें निर्वासित कर दिया। राज्य छोड़कर विक्रमादित्य के चले जाने के बाद भर्तृहरि का जीवन-चरित्र अत्यधिक विषयवासनाग्रस्त हो गया। परिणामतः उनकी नृशंसता से प्रजावर्ग में आतङ्क उपस्थित हो गया। राज्य में अशान्ति फैल गयी और राज्य-व्यवस्था असंतुलित हो उठी।

इसी अवसर पर एक ऐसी घटना घटी, जिसका विषयासक्त भर्तृहरि के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा।

सुना जाता है कि किसी ब्राह्मण ने भर्तृहरि पर प्रसन्न होकर उन्हे एक ऐसा दिव्य फल दिया, जो आयुर्वर्द्धक था। राजा ने उस फल को स्वयं न खाकर प्राणों से भी अधिक प्रिय अपनी रानी पद्माक्षी या अनङ्गसेना को दे दिया, पर उस रानी ने भी फल को न खाकर अपने एक गुप्त प्रेमी को दे दिया, उसने भी उस दिव्य फल के महत्त्व को जानकर उसे अपनी प्रियतमा एक वेश्या को दे दिया। वेश्या ने भी उसे स्वयं नहीं खाया, अपितु यह विचार करके कि यदि यह फल राजा को अर्पण किया जाय, तो वह उसे खाकर अधिक दिनों तक जीवित रह सकता है और प्रजा का भली-भाँति पालन-पोषण कर सकता है। अतः इस सद्भावना से उसने वह फल राजा भर्तृहरि को दे दिया। पुनः यही फल पाकर भर्तृहरि ने आश्चर्यचकित होकर इस रहस्य का पता लगाया तो उन्हें पता भी चल गया, तब उन्होंने विषण्ण होकर अपने मन में सोचा—ओह, मैं जिस प्रियतमा स्त्री का निरन्तर चिन्तन करता हूं, वह मुझसे विरक्त है और वह किसी दूसरे पुरुष को चाहती है। वह पुरुष भी उससे विरक्त हो किसी अन्य स्त्री में अनुरक्त है और मेरे लिए कोई दूसरी ही स्त्री प्रसन्न होती है। यह कामदेव की कितनी बड़ी विडम्बना है। इसलिए उस मेरी प्रियतमा स्त्री को, उसके अभिलाषी पुरुष को, कामदेव को, इस स्त्री को तथा मुझे धिक्कार है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

इस घटना का भर्तृहरि के मन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने रानी की बड़ी भर्त्सना की, जिससे उसने आत्महत्या कर ली। इससे उनका हृदय और भी क्षुब्ध हो उठा। फिर भी पिंगला नाम की दूसरी रानी ने राजा को अपने वश में कर लिया।

इसी समय पुनः दूसरी घटना यह हुई कि एक दिन राजा भर्तृहरि शिकार खेलने के निमित्त घर से जङ्गल में गये हुए थे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक शिकारी ने अपने बाण से एक मृग को मार डाला और स्वयं साँप के काटने से मर गया। बाद में मृगी आकर अपने पति की देह पर गिरकर मर गयी और शिकारी की स्त्री भी अपने पति के साथ चिता में बैठकर जल मरी।

यह दृश्य देखकर राजा के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ। वे जङ्गल से लौट कर अपने राजभवन में आ गये और उन्होंने इस हृदयविदारक घटना को अपनी प्रिया पिंगला से कह सुनाया, पर उसने इसका कुछ महत्त्व न देते हुए कहा—राजन् ! पतिव्रता स्त्री को अग्निचिता की जरूरत नहीं पड़ती है, वह तो पति के मर जाने पर तत्काल अपना प्राण त्याग देती है।

राजा को रानी पिंगला के इस कथन पर विश्वास नहीं हुआ, फिर भी उन्होंने इसकी परीक्षा लेने के विचार से कुछ दिनों के बाद पुनः शिकार खेलने के बहाने जङ्गल में जाकर वहाँ से अपना कपड़ा खून में भिगोकर अपने अनुचरों के हाथ रानी पिंगला के पास भिजवा दिया। तदनुसार सेवकों ने खून से लतपथ राजा का वस्त्र देते हुए रानी से बड़े दुःख के साथ कहा—महारानी ! महाराज शेर के साथ लड़ते हुए अपने प्राण गवाँ बैठे हैं। यह हृदयद्रावक घटना सुनकर रानी पिंगला ने राजा के उन वस्त्रों को जमीन पर रखकर स्वयं उसके आगे सिर झुकाकर अपना प्राण त्याग दिया। बाद में जब राजा भर्तृहरि को इस प्रकार रानी के मर जाने की बात मालूम हुई, तो वे बड़े दुःखी हुए और राजभवन का परित्याग कर वैरागी बन बैठे। अनन्तर भर्तृहरि ने योगी गोरखनाथ से योगदीक्षा लेकर योगसाधना करते-करते अपना शरीर छोड़ दिया और भगवान् में लीन हो गये।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गीतिकाव्यों की परम्परा—गीतिकाव्यों के क्षेत्र में महाकवि कालिदास का ऋतुसंहार पहली कृति है। शृङ्गारतिलक का प्रणेता महाकवि कालिदास से भिन्न कोई दूसरा ही कालिदास नामधारी कवि हुआ है। अमरुकशतक गीति-ग्रन्थ का निर्माता कुछ विद्वान् स्वामी शङ्कराचार्य को बताते हैं, किन्तु यह धारणा अब निराकृत हो चुकी है। वस्तुतः अमरुक नामक एक राजा ने अमरुकशतक का निर्माण किया है। इसके बाद भर्तृहरि ने शृङ्गारपरक, नीतिपरक तथा ज्ञानपरक तीन शतकों का निर्माण किया। अनन्तर कश्मीर के महाकवि बिल्हण ने अपनी प्रणयकथा को चौरपञ्चाशिका के रूप में प्रकट किया। बाद में बंगाल के विद्वत्सेवी लक्ष्मणसेन के आश्रित जयदेव कवि ने उत्तम काव्य गीतगोविन्द की रचना की है। गीतगोविन्द के ही अनुकरण पर विश्वनाथ सिंह का संगीतरघुनंदन है। इसी परम्परा में सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्री आनन्दवर्द्धन ने देवीशतक, बाणभट्ट नें चण्डीशतक और उसके श्वसुर मयूर-कवि ने सूर्यशतक लिखा।

गीतिकाव्यों की परम्परा में ही स्वामी शङ्कराचार्यजी की सौन्दर्यलहरी, शाहंशाह शाहजहाँ के आश्रित कवि पण्डितराज जगन्नाथ की गङ्गालहरी, पुष्पदन्ताचार्य के महिम्नस्तोत्र आदि का भी स्थान है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में प्राचीन काल से ही गीतिकाव्यों का प्रमुख स्थान रहा है, जिनसे साहित्य का भण्डार भरा पड़ा है।

उपजीव्य काव्य—भर्तृहरि के नीतिशतक के अनुकरण पर वेदान्तदेशिक ने सुभाषितनीति और वैराग्यशतक के आधार पर वैराग्यपञ्चक, कुसुमदेव ने दृष्टान्तशतक तथा द्याद्विवेदी ने नीतिमञ्जरी प्रभृति ग्रन्थ लिखे हैं। पण्डितराज जगन्नाथ का भामिनीविलास भी इस विषय का उच्चतम ग्रन्थ है। इसी परम्परा में नीलकण्ठ दीक्षित ने सभारञ्जनशतक एवं अन्योक्तिशतक लिखा है। तथा बल्लालसेन ने बल्लालशतक का प्रणयन किया है। कविपति उमापति द्विवेदीजी की शिवास्तुति भी इसी कोटि की है।

स्वतन्त्रतादिवस
१९७५

विद्वद्वशंवद—
श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ श्रीः ॥

नीतिशतकम्

'विमला'-'सुधा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

———

इह खलु तत्रभवान् परमकारुणिको महायोगीश्वरो विद्वत्प्रवरो राजा भर्तृहरिः कारणविशेषेण लोकव्यवहाराद्विरक्तः सकलभोगसाधनं विरञ्चिप्रपञ्चं तृणकणमिवानुभवन् शाश्वतशान्तिमुखमुपदेष्टुकामनया नीति-शृङ्गार-वैराग्य-वर्णनपरं सुभाषितपद्यमयं प्रबन्धं प्रारम्भमाणो निर्विघ्नप्रबन्धपरिसमाप्तिफलश्चाशासानः प्रथमं नीतिशतकं प्रस्तुवन् शिष्टाचारपरम्परामवलम्ब्य सर्वोत्कृष्टताविशिष्टपरज्योतिःस्वरूपनिर्गुणब्रह्मनमस्कारात्मकं मङ्गलमादौ निबध्नाति—

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥ १ ॥

अन्वयः—दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये स्वानुभूत्येकमानाय शान्ताय तेजसे नमः (अस्त्विति शेषः) ।

व्याख्या—दिशः=पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणाः, कालाः=भूतभविष्यद्वर्तमानाः, दिशश्च कालाश्चेति दिक्कालाः, ते आदौ विद्यन्ते येषां ते दिक्कालादयः, दिक्कालादिभिः, अनवच्छिन्ना=अपरिमिता, अनन्ता, चिन्मात्रमूर्तिः=ज्ञानमयी मूर्तिः, यस्य तत् दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तिः, तस्मै दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये । स्वस्यात्मनोऽनुभूतिः=अनुभवः एव, एकं=केवलं, मानं=प्रमाणं, यत्र तत् स्वानुभूत्येकमानं, तस्मै स्वानुभूत्येकमानाय । शान्ताय=सकलविकारोपद्रवरहिताय । तेजसे=ज्योतीरूपाय ब्रह्मणे । नमः=नमस्कारः अस्तु ।

अथ मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाण्यायुष्मत्पुरुषकाणि च भवन्ति, अध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति इति भगवद्भाष्यकारपतञ्जलिमुनिवचनप्रामाण्यात् तथा आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वापि तन्मुखम् इत्याचार्यदण्डिवचनाच्च ग्रन्थादौ नूनं मङ्गलमाचरितव्यम्, अपि च समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत् इत्यनुमितश्रुतिबोधितकर्तव्यताकत्वाद् निर्विघ्नतापूर्वकं प्रारीप्सितग्रन्थपरिसमाप्तिकामेन पुंसाऽवश्यं मङ्गलं विधेयमिति कर्तव्यमनुसन्धाय सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः आस्तिकशिरोमणिः मानवरत्नमणिः योगिराजो राजा भर्तृहरिः दिक्कालेत्यादिना मङ्गलमाचरितवानिति भावः। पद्येऽस्मिन्नस्ति अनुष्टुप्नामकं छन्दः।

भावार्थः—यद् ब्रह्मं दिक्कालादिभिरपरिमेयं सर्वत्र च व्याप्तं वर्तते तस्याविनाशिनो ज्ञानमयस्य ब्रह्मणः सत्तायामात्मनोऽनुभव एव केवलमस्ति प्रमाणम्। अतो विकाररहितं परं ब्रह्म अहं प्रणमामि।

भाषार्थ—पूर्व, पश्चिम आदि दिशा और भूत, भविष्य आदि काल के द्वारा अपरिमेय, अविनाशी तथा ज्ञानमय स्वरूप वाले जिसकी सत्ता का बोधक प्रमाण केवल आत्मानुभव ही है, उस शान्तमूर्ति सर्वप्रकाशक परब्रह्म को नमस्कार है ॥ १ ॥

अथेदानीं सहृदयहृदयानामभावात् सुभाषितस्य वक्तुमनवकाश इत्याह—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥ २ ॥

अन्वयः—बोद्धारः मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः अन्ये च अबोधोपहताः (सन्ति अतः) सुभाषितम् अङ्गे जीर्णम्।

व्याख्या—बोद्धारः=परिज्ञातारो विद्वांसः। मत्सरग्रस्ताः—मत्सरेण=असूयया, अन्यशुभद्वेषेण, ग्रस्ताः=समाक्रान्ताः। प्रभवः—प्रभवन्तीति प्रभवः=राजानः। स्मयदूषिताः—स्मयेन=गर्वेण, दूषिताः=मलिनाः, इति स्मयग्रस्ताः=गर्वदुर्विनीताः। अन्ये च=उक्तोभयव्यतिरिक्ता जनाः, अबोधोपहता—अबोधेनाज्ञानेनोपहताः=नष्टात्मानो न त्वधिकारिणः सन्ति। अतो हेतोः सुभाषितं=साधुभाषणम्। अङ्गे=वक्तुरन्तरङ्गे। जीर्णं=अन्तर्हितम्। जातमित्यर्थः। अत्राप्यस्ति अनुष्टुबेव छन्दः।

भावार्थः—अथाज्ञानां परोत्कर्षासहनेन समाक्रान्तत्वात् तेऽहृदयालुत्वाच्च सुभाषितम् अनुमोदन्ते, गर्वग्रस्तत्वाद् राजानो न शृण्वन्ति, इतरेषामज्ञानोपहतत्वादाकर्णनयोग्यतैव नास्ति। अतो साधुभाषणं प्रसङ्गोचितं सुन्दरवचनं वक्तु कलेवरे एव जीर्णं न त्वद्यापि बहिः प्रवृत्तम्। अर्थादिदानीं गुणग्राहिणो जना न सन्तीति सुभाषितवचनं वक्तुर्मुखाभ्यन्तरे एव विलीनं न बहिर्विकासमगमत्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भाषार्थ—कवि के सुभाषित वचनों का कोई भी व्यक्ति सच्चा पारखी नहीं है, क्योंकि विद्वद्वर्ग ईर्ष्याग्रस्त है तथा नृपवृन्द गर्व से मत्त है और अन्य साधारण शिक्षित लोग अज्ञान से दबे हुए हैं। अतः सुभाषित आज तक कवि के हृदय में ही रह गया, उसे बाहर निकलने का अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ। फिर भी कुछ कहना चाहिए। अतः कुछ कहता हूँ, शायद भविष्य में कोई कदरदान निकल आये ॥ २ ॥

ननु अज्ञानं विशिष्टं ज्ञानं चेत्युभयमपि सुखसाध्यत्वेन समीचीनं किन्तु साधारणं ज्ञानं न समीचीनमिति अज्ञानं स्वरूपं निरूप्यते—

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रञ्जयति ॥ ३ ॥

अन्वयः—अज्ञः सुखम् आराध्यः, विशेषज्ञः सुखतरम् आराध्यते, किन्तु ज्ञानलवदुर्विदग्धं तं नरं ब्रह्मापि न रञ्जयति।

व्याख्या—न किञ्चित् जानातीत्यज्ञः=मूढः। सुखम्=अनायासेन। आराध्यः=समाधेयः। विशेषं जानातीति विशेषज्ञः=तत्त्ववेत्ता। सुखतरम्=अतिशयेन सुखं सुखतरम्=अत्यल्पायासेन। आराध्यः=समाधीयते। किन्तु ज्ञानं=शास्त्रसंवित्, तस्य लवेन=लेशेन, दुर्विदग्धः=पण्डितमानी, इति ज्ञानलवदुर्विदग्धः, तं ज्ञानलवदुर्विदग्धम्। तं नरम्=मूढजनम्। ब्रह्मापि=कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सर्वथा समर्थश्चतुर्मुखोऽपि। न रञ्जयति=न हि रञ्जयितुं शक्नोति, न वा प्रसादयति। अस्मिन् पद्ये आर्यानामकं वृत्तं वर्तते।

भावार्थः—इह संसारे मूढ-विद्वांसौ द्वावपि प्रयत्नेन समाधयितुं शक्येते, किन्तु दुराग्रहग्रस्तस्य पुंसः समाधानमतिचतुरेणापि पुंसा न शक्यमिति भावः।

भाषार्थ—इस विश्व में तीन तरह के प्राणी होते हैं—अज्ञ, विशेषज्ञ और मूर्ख। उनमें अज्ञ को आसानी से समझाया जा सकता है तथा विशेषज्ञ को सुखपूर्वक समझाया जा सकता है, किन्तु मूर्ख मनुष्य को अति चतुर व्यक्ति भी नहीं समझा पाता है। अर्थात् मूर्ख आदमी को समझाना सर्वथा असाध्य है, क्योंकि वह अपने व्यर्थ अहङ्कार के कारण किसी की भी बात मानता ही नहीं है।

अथ द्वाभ्यां श्लोकाभ्यां मूर्खमानवस्य दुराराध्यतां दर्शयति—

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्
समुद्रमपि सन्तरेत् प्रचलदूर्मिमालाऽऽकुलम्।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ४ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात् प्रसह्य माणम् उद्धरेत् । प्रचलदूर्मिमालाकुलं समुद्रम् अपि सन्तरेत् । कोपितं भुजङ्गम् अपि पुष्पवद् शिरसि धारयेत् । तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम् न आराधयेत् ।

व्याख्या—मकरस्य=जलग्राहविशेषस्य, वक्त्रे=मुखे, या दंष्ट्रा=निशिताग्रदशनविशेषाः, तासां अन्तरात्=अभ्यन्तरात् । प्रसह्य=बलात्कारेण । मणिं=रत्नम् । उद्धरेत्=बहिर्निष्काशयितुं शक्नुयात् । प्रचलन्त्यः=दोलायमाना ये ऊर्मयः=तरङ्गाः, तेषां मालाभिः=परम्पराभिः, आकुलम् । समुद्रं=सागरम् अपि । सन्तरेत्=तीर्त्वा समुल्लङ्घयितुं समर्थो भवेत् । कोपितं=क्रोधवन्तम् । भुजङ्गम्=सर्पम् अपि । शिरसि=मस्तके । पुष्पवद्=कुसुमवद् । धारयेत्=मणिमन्त्रादिसाधनेन धर्तुं शक्नुयात् । किन्तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम्—प्रतिनिविष्टः=दुराग्रहविशेषैः ग्रस्तो, यो मूर्खजन इति प्रतिनिविष्टमूर्खजनः, तस्य चित्तं, तत् प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम्=दुराग्रहग्रस्तपामरजनमानसम् । तु न आराधयेत्=समाधातुं न शक्नुयात् । अत्रास्ति पृथ्वीनामकं छन्दः ।

भावार्थः—मानवो यदीच्छेत्तर्हि मकरस्य मुखे वर्तमानस्य रत्नस्य निष्कासनम्, तरङ्गाकुलस्य समुद्रस्य सन्तरणं, क्रुद्धस्य सर्पस्य मस्तके धारणं चेत्यादि दुष्करं कार्यं विविधैः प्रयत्नविशेषैः कर्तुं शक्नुयात्, परन्तु दुराग्रहिणो मूर्खस्य मनःप्रसादनं सर्वथा असम्भवं भवति ।

भावार्थ—मनुष्य मगर के मुख के अन्दर दाढों के बीच से मणि को बलपूर्वक निकाल सकता है । उठती हुई तरङ्गों से व्याप्त समुद्र को पार कर सकता है और क्रुद्ध सांप को भी शिर पर पुष्प की तरह धारण कर सकता है, किन्तु दुराग्रही मूर्खों के मन को प्रसन्न नहीं कर सकता है । अर्थात् मनुष्य असम्भव कार्य भी कर सकता है, किन्तु दुराग्रही मूर्ख के मन को अनुकूल करना सर्वथा असम्भव है ॥ ४ ॥

अत्यन्तदुर्लभस्य वस्तुनः प्रसाधने सम्भवेऽपि मूर्खचित्तस्य प्रसाधनं सर्वथाऽसम्भवमित्याह—

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ५ ॥

अन्वयः—(मानवः) यत्नतः पीडयन् सिकतासु अपि तैलं लभेत्, पिपासार्दितः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मृगतृष्णिकासु सलिलं पिबेत् च, पर्यटन् कदाचित् शशविषाणम् अपि आसादयेत्, तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं न आराधयेत् ।

व्याख्या—मानवः यत्नतः=कुतश्चित्प्रयत्नात् । पीडयन्=केनचित् यन्त्र-विशेषेण सम्मर्दयन् । सिकतासु=वालुकासु । अपि तैलं=तिलान्तर्गतं सारभूतं स्नेहम् । लभेत=लब्धुं शक्नुयात् । पिपासार्दितः—पातुमिच्छा पिपासा, तया पिपासया, अर्दितः=तृष्णातुरः सन्, मृगतृष्णिकासु=मरुमरीचिकासु अपि । सलिलं=जलम् । पिबेत्=पातुं शक्नुयात् । पर्यटन्=वनान्तरे । सञ्चरन्=भ्रमन् । कदाचित्=कस्मिंश्चित् काले, शशविषाणं=शशशृङ्गम् अपि । आसादयेत=अधिगन्तुं शक्नुयात् । तु=किन्तु । प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम्—प्रतिनिविष्टश्चासौ मूर्खजनश्चेति प्रतिनिविष्टमूर्खजनः, तस्य चित्तं प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं तत् । न आराधयेत्=नहि प्रसादयितुं शक्नुयात् । अत्रापि पृथ्वीनामकमस्ति वृत्तम् ।

भावार्थः—मनुष्यः प्रयत्नेन दैववशात् कदाचित् वालुकायां तैलं, मरुस्थले जलं, शशकस्य शृङ्गञ्च समासादयेत्, परन्तु दुराग्रहिणो मूर्खस्य चित्तं न कदापि प्रसादयितुं शक्नुयात् । पूर्वस्मिन् पद्ये कष्टेन मूर्खस्य चित्तमनुकूलं कर्तुं शक्यमित्युक्तम् । किन्तु प्रकृते पद्ये दुराग्रहिणो मूर्खस्य चित्तमनुकूलं कर्तुं सर्वथा न शक्यमिति सिद्धान्तयति ।

भाषार्थ—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक पेरने पर बालू से भी तेल निकाल सकता है। प्यास से व्याकुल पुरुष मृगतृष्णा या मरुस्थल में भी पानी पी सकता है। निरंतर घूमता-फिरता हुआ मानव शायद कभी खरगोश के सींग भी पा सकता है, किन्तु कोई हठी, मूर्ख आदमी के चित्त को नहीं मना सकता है। अर्थात् इस विश्व में प्रयत्न से दैवात् असम्भव कार्य भी कभी सम्भव हो सकता है, किन्तु हठी, मूर्ख को मनाना सर्वथा असम्भव है, जिस पर डट जाता है उससे कभी हटता नहीं।

अथ दुर्जनानां सन्मार्गे प्रवर्तनमतिकठिनमिति मूर्खजनस्यानुनयं कर्तुकामस्याविवेकितामाह—

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यति ।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ॥ ६ ॥

अन्वयः—यः खलान् सुधास्यन्दिभिः सूक्तैः सतां पथि नेतुं वाञ्छति, असौ बालमृणालतन्तुभिः व्यालं रोद्धुं समुज्जृम्भते, शिरीषकुसुमप्रान्तेन वज्रमणिं छेत्तुं सन्नह्यति, मधुबिन्दुना क्षाराब्धेः माधुर्यं रचयितुम् ईहते ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या— यः=पुमान् । सुधास्यन्दिभिः—सुधां=पीयूषं, स्यन्दति=अभि-वर्षतीति सुधास्यन्दीनि, तैः सुधास्यन्दिभिः=अमृतस्राविभिः । सूक्तैः=अतिमधुरैः वचनैः, प्रियोक्तिभिः खलान्=दुष्टान् । सतां=सज्जनानाम् । पथि=मार्गे । नेतुं=प्रापयितुम्, वाञ्छति=अभिलषति । असौ=तथाभूतः पुमान् । व्यालं=दुष्टगजं न तु साधारणं जन्तुम् । बालमृणालतन्तुभिः—बालस्य मृणालस्य तन्तवः-यद्वा बालाश्च ते मृणालतन्तव इति बालमृणालतन्तवः, तैः बालमृणालतन्तुभिः=कोमलकमल-किसलयसूत्रैः । रोद्धुं=वद्धुम् । समुज्जृम्भते=चेष्टते, कृतप्रयत्नो भवतीति भावः । शिरीषकुसुमप्रान्तेन— शिरीषस्य कुसुमं शिरीषकुसुमं, तस्य प्रान्तं, तेन शिरीषकुसुमप्रान्तेन=अतिकोमलेन शिरीषनामकपुष्पस्याग्रभागेन । वज्रमणिं=हीरकम् । छेत्तुं=विदारयितुम् । सन्नह्यति=सन्नद्धो भवति । मधुबिन्दुना—मधुनः बिन्दुः मधुबिन्दुः, तेन मधुबिन्दुना=माक्षिकविप्रुषा । क्षाराम्बुधेः=लवणार्णवस्य । माधुर्यं=मधुरताम् । रचयितुं=सम्पादयितुम् । ईहते=अभि-लषति । अस्मिन् श्लोके शार्दूलविक्रीडितनामकमस्ति वृत्तम् ।

भावार्थः—अतिकोमलकमलतन्तुभिः मत्तगजराजस्य बन्धनमिव, अति-पेशलशिरीषपुष्पाग्रभागेन कठोरहीरकमणिवेधनमिव, मधुरमधुबिन्दुना समुद्रस्य माधुर्यसम्पादनमिव, अमृतमयैः मधुरैः शिक्षणैः दुष्टस्य पुरुषस्य सन्मार्गे समानयनं सर्वथा असम्भवं भवतीति भावः ।

भाषार्थ—जो अपने अमृतमय मधुर उपदेश-वचनों से दुष्टों को सज्जनों के सन्मार्ग पर ले जाना चाहता है, वह कोमल कमल-नाल के सूत्रों से मदोन्मत्त हाथी को बांधना चाहता है, अतिकोमल शिरीष के पुष्प के अग्रभाग से अति कठोर हीरा को वेधना चाहता है तथा एक बूंद शहद से खारे समुद्र को मीठा करना चाहता है । अर्थात् मीठे वचनों का प्रयोग कर दुष्ट को सज्जन बनाने में प्रवृत्त व्यक्ति वैसे ही उपहासास्पद होता है । जैसे मृणालतन्तु द्वारा गजबन्ध-नादिक दुष्कर कार्य करने वाला मन्दबुद्धि मनुष्य । क्योंकि दुष्ट कभी किसी की बात नहीं मानते, अतः उनको सदुपदेश देने से कोई लाभ नहीं होता ।। ६ ।।

अथ मौनावलम्बनेन मूर्खाणां मूर्खत्वदोषा दूरीभवितुमर्हन्तीति मौनप्रशंसा-पूर्वकं तेषां गतिमाह—

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः ।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ।। ७ ।।

अन्वयः—विधात्रा अपण्डितानां स्वायत्तम् एकान्तगुणं मौनम् अज्ञ-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तायाः छादनं विनिर्मितम् । (इदम्) सर्वविदां समाजे विशेषतः विभूषणम् (भवति) ।

व्याख्या—विधात्रा=ब्रह्मणा । स्वायत्तम्=आत्माधीनं, न तु परोपदेशापेक्षम् । एकान्तगुणं—एकान्तं गुणो यत्र तत् एकान्तगुणं=अत्यन्तहितकारिस्ववगुणाच्छादकत्वात् । विशेषतः=विशेषाकारेण । सर्वविदां=सर्वज्ञसभायाम् । विभूषणं=उपकारहेतुत्वाद् भूषणप्रायम् । मौनं=तूष्णीम्भावः । अपण्डितानाम्=अविदुषाम्, मूर्खाणामित्यर्थः । अज्ञतायाः=मौढ्यस्य । छादनम्=आच्छादकम् । विनिर्मितं=रचितम् । अस्मिन् पद्ये उपजातिनामकं छन्दोऽस्ति ।

भावार्थः—मौनं प्रशंसन् कविः कथयति यद् विधिना मूर्खाणां कृतेऽत्यन्तमुपकारि मौनं तदज्ञताया आवरकं रचितम् । यदि ते मौनमालम्ब्य तिष्ठेयुस्तर्हि तेषां मौर्ख्यं न कथञ्चित् प्रकटितं स्यात् । विशेषतो विदुषां समाजे मूर्खाणां मौनावलम्बनं तु भूषणवदाच्छादकं भवति ।

भाषार्थ—ब्रह्मा ने मूर्खों के अधीन अत्यन्त उपकारी मौनावलम्बन को उनकी मूर्खता को छिपाने के लिए आच्छादन (ढँकना) बना दिया है । विशेषकर विद्वानों की सभा (समाज) में मूर्खों का मौनावलम्बन अत्यन्त गुणकारी होता है । अर्थात् मौनावलम्बन से मूर्खों को लाभ ही होता है, किसी हानि की आशङ्का नहीं ॥ ७ ॥

ननु अल्पज्ञता हि मानवानां मनसि मोहमुत्पादयति बुधजनसमागमेन तदपगमो जायते इति कस्यचिदनुभविनः परान् प्रति स्वानुभवप्रकटनपूर्वकमाह—

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं ।
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥ ८ ॥

अन्वयः—यदा अहम्, किञ्चिज्ज्ञः तदा द्विप इव मदान्धः समभवम्, सर्वज्ञः अस्मि इति मम मनः अवलिप्तम् (अभूत्), यदा बुधजनसकाशात् किञ्चित् किञ्चिद् अवगतं तदा मूर्खः अस्मि इति मे मदः ज्वर इव व्यपगतः ॥ ८ ॥

व्याख्या—यदा=यस्मिन् काले । अहम् । किञ्चिज्ज्ञः=अल्पज्ञः । तदा=तस्मिन् काले । द्विप इव=गज इव । मदान्धः—मदेन अन्धः मन्दान्धः=दर्पविवेकशून्यः । समभवम्=जातोऽस्मि । सर्वज्ञः=सकलपदार्थज्ञानसम्पन्न अस्मि । इति मम मनः=मानसम् । अवलिप्तं=गर्वितम् । अभवत्=अजायत । यदा=यस्मिन् काले । बुजजनसकाशात्—बुधाश्च ते जना इति बुधजनाः, तेषां बुधजनानां सकाशं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बुधजनसकाशम्, तस्मात् बुधजनसकाशात्=विद्वज्जनसमागमात् किञ्चित्। किञ्चित्=ईषत्। अवगतम्=ज्ञातम्। तदा मूर्खः=जडबुद्धिः अस्मि इति। मे=मम। मदः=गर्वः। ज्वरः=ज्वरव्याधिः, शरीरसन्ताप इव। व्यपगतः= निर्गतो दूरीभूतो वा। अत्र श्लोकेऽस्ति शिखरिणीनामकं छन्दः।

भावार्थः—आचार्यवान् पुरुषो वेद इति श्रवणादाचार्यविगतविद्यस्य पुंसः विवेकज्ञानं सम्भवति। यदा अल्पज्ञोऽपि मनुष्यः आत्मानं सर्वज्ञं मनुते तदा स महामूर्ख इवाभिमानी भवति। यस्तु सर्वज्ञोऽपि स्वं मूढमात्मानं मनुते, स विवेकज्ञानवान्। यद्वा एतावन्तं कालं मदवशात् मूर्ख आसं परमिदानीं गुरु- शिक्षावशान्मया विवेकावगतिरधिगता। अत्र मदो गर्वहेतुः, गुरुशुश्रूषा च विनयहेतुरिति निर्गलितोऽर्थः।

भाषार्थ—जब मैं अल्पज्ञ था, तब मतवाले हाथी के समान मदान्ध हो गया था और मैं सर्वज्ञ हूँ, इस प्रकार मेरा मन गर्वीला हो गया था, किन्तु जब विद्वानों के संसर्ग से कुछ जानकारी होने लगी, तब मैं मूर्ख हूँ, यह समझकर मेरा वह ज्वरमद उतर गया। अर्थात् अल्पज्ञ व्यक्ति अपने थोड़े ज्ञान को सब कुछ समझ लेता है और अहङ्कारी बन बैठता है। जब विद्वानों की संगति से जानने लगता है, तब वह अपने को अज्ञ समझने लगता है एवं अभिमान छोड़ देता है। अतः विद्वानों का संसर्ग विशेष लाभकारी है।

स्वार्थपरायणस्य प्राणिनः परिग्रहपरित्यागे न भवति, कुतोऽप्याशङ्केति कुक्कुरदृष्टान्तेन समर्थयति—

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धिजुगुप्सितं
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते
न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्॥

अन्वयः—कृमिकुलचितम्, लालाक्लिन्नम्, विगन्धिजुगुप्सितम्, निरामिषम्, निरुपमरसम्, नरास्थि प्रीत्या खादन् यथा पार्श्वस्थं सुरपतिम् अपि विलोक्य न शङ्कते। हि क्षुद्रः जन्तुः परिग्रहफल्गुतां न गणयति।

व्याख्या—श्वा=शुनकः। कृमिकुलचितम्—कृमीणां कुलानि कृमिकुलानि, कृमिकुलैः चितं व्याप्तम् इति कृमिकुलचितम्=कीटसमूहव्याप्तम्। लालाक्लिन्नम्— लालया=दन्तान्तर्गतजलेन, क्लिन्नम् इति लालाक्लिन्नम् तत् लालाक्लिन्नम्=लाल- निस्पन्दनार्द्रम्। विगन्धिजुगुप्सितम्—विगन्धि आमगन्धोऽस्यास्तीति विगन्धि= दुर्गन्धि, अत एव जुगुप्सितम्=घृणास्पदम्। तदपि निरामिषं=मांसलेशशून्यम्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निरुपमरसम्=उपमानंरहितम् । नरास्थि-नरस्य अस्थि नरास्थि=रासभकीकसं वा । प्रीत्या=प्रेम्णा । खादन्=भक्षयन्, लेलिहानः । पार्श्वस्थं=समीपवर्तिनम् । सुरपतिमपि=देवराजमिन्द्रमपि । विलोक्य=दृष्ट्वा । न शङ्कते=न लज्जते । हि=तथाहि । क्षुद्रः=तुच्छः । जन्तुः=प्राणी । परिग्रहफल्गुताम्—परिग्रहस्य=स्वीकृतस्य, फल्गुता=आसारता, परिग्रहफल्गुता, तां परिग्रहफल्गुताम् । न गणयति=न विचारयति । अस्मिन् श्लोके तु वर्तते हरिणीवृत्तम् ।

भावार्थः—यथा लालाक्लिन्नं दुर्गन्धमसारं मनुष्यस्य रासभस्य वाऽस्थि लेलिहानोऽपि कुक्कुरः न कस्मादपि बिभेति, तथैव नीचप्राणी स्वीकृतेऽपि वस्तुनि तत्र तुच्छत्वं न मनुते, नापि ततो लज्जते इति भावः ।

भावार्थ—कीड़ों से भरपूर, लार से भीगी हुई, दुर्गन्धमय, घृणास्पद, मांस से रहित एवं विचित्र रस से युक्त गधे या मनुष्य की हड्डी बड़े चाव से चाटता हुआ कुत्ता बगल में खड़े देवराज इन्द्र को भी देखकर शङ्का नहीं करता, क्योंकि नीच प्राणी अपनाई हुई वस्तु की तुच्छता की परवाह नहीं करता । इस प्रकार स्वार्थपरायण प्राणी भी परिग्रह की तुच्छता को न समझता है, न तो किसी से डरता है, न किसी की परवाह ही करता है ॥ ९ ॥

अथाविवेकस्यानर्थपरम्परावर्णनपुरःसरं विवेकस्यावश्यकत्वं प्रदर्शयति—

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥ १० ॥

अन्वयः—इयं गङ्गा स्वर्गात् शार्वं शिरः, पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरम्, उत्तुङ्गात् महीध्रात् अवनिम्, अपि च अवनेः जलधिम्, (एवम्) अधः अधः स्तोकं पदम् उपगता । अथवा विवेकभ्रष्टानां विनिपातः शतमुखः भवति ।

व्याख्या—इयं=एषा भूतले दृश्यमाना । गङ्गा=भागीरथी । पूर्वं स्वर्गात्=स्वर्गलोकात् । शार्वं—शर्वस्येदं शार्वं=शिवसम्बन्धि । शिरः=मस्तकम् । उपगता । तदनु पशुपतिशिरस्तः—पशूनां पतिः पशुपतिः, पशुपतेः शिरः पशुपतिशिरः, तस्मात् पशुपतिशिरस्तः=शङ्करमस्तकात् । क्षितिधरं—क्षितिं धरतीति क्षितिधरः, तं क्षितिधरम्=हिमवन्तम् उपगता । उत्तुङ्गात्=अत्युन्नतात् । महीध्रात्=क्षितिधरात्, हिमालयात् पर्वतात् । अवनिं=पृथिवीम् । उपगता । अपि अवनेः=पृथिवीतः । जलधिं=समुद्रम् उपगता । एवं क्रमेण अधोऽधः=नीचैः नीचैः । स्तोकं=

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अल्पम् । पदं=स्थानम् । उपगता=प्राप्ता । अथवा=युक्तमेव । पक्षान्तरे वा । विवेकभ्रष्टानां=विवेकात् भ्रष्टा विवेकभ्रष्टाः, तेषां विवेकभ्रष्टानाम्=सद्विचारच्युतानां जनानाम् । विनिपातः=अवनतिः । शतमुखः—शतानि मुखानि यस्य स शतमुखः=बहुप्रकारः अनेकद्वारः । भवति=जायते । विवेकयुक्तानां तु नैवं भवति । अतो विवेकान्न भ्रंशितव्यम् । अत्राप्यस्ति शिखरिणीनामकं छन्दः ।

भावार्थः—यथा उच्चतमात् विष्णुपदात् अधः पतिता गङ्गा क्रमशः शिवमस्तकं, हिमालयं, भुवं च पतन्ती समुद्रं प्रविवेश । तथैव विवेकशून्या नराः सर्वतोमुखीं विपत्तिं प्राप्नुवन्ति । यदि सकललोकहिताय अपि गङ्गाया भ्रंशादीदृगवस्थापत्तिः तर्हि किमुतान्येषाम्—इति विवेकस्यात्यन्तमावश्यकत्वमुक्तमित्यवगन्तव्यम् ।

पुरा किल राजा भगीरथः अश्वमेधीयाश्वान्वेषणे नियुक्तानां कपिलमुनिनेत्राग्निना भस्मीभूतानां सगरकुमाराणां समुद्धारार्थम् उग्रं तपो विधाय विष्णुपदीं शिवञ्च सन्तोष्य स्वर्गादुत्तरोत्तरमधः पतन्तीं भूलोकमानीतवान् भगवतीं सुरसरितमिति पौराणिकी कथाऽत्रानुसन्धेया ।

भाषार्थ—जैसे यह गङ्गाजी स्वर्ग से शिव के मस्तक पर, पुनः शिव के मस्तक से उन्नत हिमालय पर्वत पर, वहाँ से पुनः पृथ्वी पर, तत्पश्चात् पृथ्वी से भी समुद्र में जा गिरीं । इस प्रकार गङ्गाजी क्रमशः स्वर्ग से नीचे से नीचे स्थान पर पहुँच गयीं । उसी प्रकार विवेकहीन पुरुष का पतन कई प्रकार से होता है । अतः मनुष्य को विवेकशील होना चाहिए, अन्यथा उसे सर्वत्र धक्के खाने पड़ते हैं ॥ १० ॥

अथेदानीमग्न्यादीनां निवारणप्रतिपादकं हेतुप्रदर्शनपूर्वकं मूर्खस्य मूर्खत्वापरिहार्यतया तन्निवारणे शास्त्राभावं हेत्वभावं च स्फुटीकुर्वन्नाह—

> शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
> नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ ।
> व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं
> सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥ ११

अन्वयः—हुतभुक् जलेन वारयितुं शक्यः, सूर्यातपः छत्रेण, समदः नागेन्द्रः निशितांकुशेन, गोगर्दभौ दण्डेन, भेषजसंङ्ग्रहैः व्याधिः विविधैः मन्त्रप्रयोगैः विषं च (वारयितुं शक्यते), सर्वस्य शास्त्रविहितम् औषधं अस्ति, (परं) मूर्खस्य औषधं नास्ति ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—हुतभुक्–हुतहोमद्रव्यं हविः घृतादि भुङ्क्ते इति हुतभुक्=अग्निः। जलेन=वारिणा। वारयितुं=शमयितुम्. शक्यः=योग्यः। एवं रीत्या सूर्यातपः–सूर्यस्यातपः सूर्यातपः=घर्मः उष्णता। छत्रेण=आतपत्रेण। निवारयितुं शक्यः। समदः—मदेन सहितः समदः=मदसहितः। नागेन्द्रः=गजराजः। निशिताङ्कुशेन—निशितश्चासावंकुशो निशितांकुशः, तेन=तीक्ष्णांकुशेन। गोगर्दभौ=वृषभ-रासभौ। दण्डेन=लगुडेन। व्याधिः=शरीरगतो ज्वरादिरोगः। भेषजसङ्ग्रहैः–भेषजानां संग्रहः भेषजसंग्रहः, तैः भेषजसंग्रहैः=औषधसंग्रहणैः निवारयितुं शक्यः। विषं=सर्पदशनसमुद्भूतं गरलं कालकूटादि वा। विविधैः=विभिन्नैः। मन्त्र-प्रयोगैः–मन्तारं त्रायन्ते इति मन्त्राः, तेषां प्रयोगा मन्त्रप्रयोगा, तैः मन्त्रप्रयोगैः। निवारयितुमुत्तारयितुं शक्यः। एवं सर्वस्य पदार्थस्य। शास्त्रविहितम्—शास्त्रेण शास्त्रेषु वा विहितमिति शास्त्रविहितम्=शास्त्रोपदिष्टम्। औषधं=भेषजं, दोषप्रतिकाराय। अस्ति=विद्यते। किन्तु मूर्खस्य=जडमतेः पुरुषस्य। औषधं नास्ति=न विद्यते। तस्मात् सर्वस्य प्राणिहिंसाकरणीभूतदुष्टजन्तुजातस्य शास्त्रविहितं भेषजमस्ति, किन्तु मूर्खतानिवारणसमर्थं सुभाषितादिरूपं नास्तीत्यर्थः। अत्रापि शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

भावार्थः—अग्न्यादिकं सकलं जलादिना शमयितुं शक्यते, किन्तु मूर्खस्य निवारणं कथमपि कर्तुं न शक्यते इति भावः।

भाषार्थ—आग पानी से शान्त की जा सकती है, सूर्य की धूप छाते से रोकी जा सकती है, मतवाला हाथी तीखे अंकुश द्वारा वश में किया जा सकता है, गौ एवं गधे डण्डे से ठीक किये जा सकते हैं, रोग दवाओं से दूर किया जा सकता है और विष अनेक प्रकार के मन्त्रों से उतारा जा सकता है। इस प्रकार सब की दवा शास्त्रों में विहित है, किन्तु मूर्ख मनुष्य के लिए कोई दवा नहीं है। अतः मूर्ख की मूर्खता का प्रतिकार अशक्य है॥ ११॥

अथेदानीं नराकृतिं पशुं निरूपयति—

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्॥ १२॥

अन्वयः—साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः (नरः) पुच्छविषाणहीनः साक्षात् पशुः (अस्ति)। (अयं) तृणं न खादन् अपि जीवमानः (भवति) तत् पशूनां परमं भागधेयम् (विद्यते)।

व्याख्या—साहित्यं=काव्यार्थप्रतिपादकं शास्त्रम्. सङ्गीतं=वाद्य नृत्य-गीत-स्वरूपम्, कलाः=शिल्पाद्याः चतुःषष्टिसङ्ख्याकाः, साहित्यं सङ्गीतं कलाश्चेति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साहित्य-सङ्गीत-कला:, साहित्य-सङ्गीत-कलाभिः विहीनो=विरहित:, इति साहित्यसङ्गीत-कलाविहीन: नर: । पुच्छं च विषाणं च पुच्छविषाणे, पुच्छ-विषाणाभ्यां हीन इति पुच्छविषाणहीन:=लाङ्गूल-शृङ्गरहित: । साक्षात् पशु:=सर्वथैव पशुसमान: अस्ति । अयं, तृणं=घासम् । न खादन् अपि=अभक्षयन्नपि । यत् जीवमान:=जीवशीलो भवति । तत् पशूनां=वास्तविकगवादि-पशूनाम् । परमं=श्रेष्ठम् । भागधेयं=भाग्यमस्ति । अत्राप्युपजातिवृत्तं वर्तते।

भावार्थः—साहित्यादिविषयानभिज्ञः पुमान् मानवोचितगुणैः विहीनः पशुरेवास्ति नूनम् । जात्या पशुप्राणिनि पुच्छ-विषाण-योगो भवति परं नराकारे पशौ तु न तावत् पुच्छादियोग: । नराकार: पशुश्च घासमभक्षयन्नपि यत् जीवति तद् वास्तविकगवादिपशूनां महत् सौभाग्यं वर्तते । अन्यथा नराकारेण पशुना घासे भक्षिते सति तत्त्वतः पशूनां जीवनमेव व्यर्थं स्यादिति भाव: ।

भाषार्थ—साहित्य, सङ्गीत और कला से अपरिचित व्यक्ति बिना सींग एवं पूंछ का साक्षात् पशु है । वह घास न खाकर भी जो जीवित रहता है यह प्राकृत पशुओं के लिए बड़े सौभाग्य की बात है । यदि वे घास खाते तो वास्तविक पशुओं का जीवन दुरूह हो जाता । अत: नर-पशुओं का घास न खाना, प्राकृत पशुओं का बड़ा ही सौभाग्य है ।। १२ ।।

भूयोऽपि मूर्खाणां मनुष्याणां पशुत्वं विशदयति—

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्म: ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।। १३।।

अन्वयः—येषां विद्या न, तपो न, दानं न, ज्ञानं न, शीलं न, गुणो न धर्मो न (अस्ति), ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः (सन्तः) मनुष्यरूपेण मृगा चरन्ति ।

व्याख्या—येषां=मनुष्याणाम् । विद्या=व्याकरणसाहित्यादिज्ञानम् । न नैव अस्ति । तप:=कायक्लेशकरं कृच्छ्रचान्द्रायणादिकं व्रतम् । न=नास्ति दानं=सत्पात्रे धनाद्यर्पणम् । न=नास्ति । ज्ञानं=सदसद्विवेक: । न=नास्ति शीलं=सदाचरणम् । न=नास्ति । गुण:=दयादाक्षिण्याद्यन्तर्गतो धर्मविशेषः न=नास्ति । धर्म:=इष्टानिष्टबोधको वेदविहितकर्तव्यविशेष: । न=नास्ति ते=मनुष्या: । मर्त्यलोके=मानवलोके । भुवि=पृथिव्या: । भारभूता:= भारस्वरूपा:, सन्तो निरर्थकजीवना: वर्तन्ते । मृगा: एव मनुष्यरूपेण=नराकारेण । चरन्ति=विचरन्ति । अत्रापि वर्तते उपजातिनामकमेव छन्द: ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—विद्यादिविरहिताः पुमांसः मनुष्याकाराः पशव एवावगन्तव्याः। ते हि स्वकीयभारेण भूमिमाक्रम्य तस्यै केवलं क्लेशमेव ददते, यतो हि तेषां जीवनं मर्त्यलोके व्यर्थमेवास्ति नूनम्।

भाषार्थ—जिन मनुष्यों में न तो विद्या ही है, न तप, दान, ज्ञान, शील, गुण एवं धर्म ही है, वे इस भूलोक में पृथ्वी के भारस्वरूप पशु ही हैं, जो मनुष्य के रूप में विचरते रहते हैं। अर्थात् मानव-जन्म पाकर भी जिसने न तो विद्याध्ययन किया, न तपश्चरण किया, न सत्पात्र को दान ही दिया, न ज्ञान का ही उपार्जन किया, न सदाचार का पालन किया, न धैर्य, साहस, दया, दाक्षिण्य आदि गुणों का ही अर्जन किया और न यहाँ वैयक्तिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कर्तव्यरूप धर्म का ही अनुष्ठान किया, वे इस विश्व में केवल आकृतिमात्र से मनुष्य कहलाते हैं, वास्तविक रूप से तो वे पशु ही हैं। उनका जीना व्यर्थ एवं निरर्थक है। अतः विद्यादि का सङ्ग्रह अत्यावश्यक हैं॥ १३॥

मूर्खाणां जनानां संसर्गस्य सर्वथैव त्याज्यत्वं निरूपयति—

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि॥ १४॥

अन्वयः—वनचरैः सह पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वरम्, (किन्तु) मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेषु अपि न (वरमस्ति)।

व्याख्या—वनचरैः—वनेऽरण्ये चरन्तीति वनचराः, तैः वनचरैः=विपिनवासिभिः। सह=सार्द्धम्। पर्वतदुर्गेषु—पर्वतानां दुर्गानि=दुष्कराणि, पर्वतदुर्गानि, तेषु पर्वतदुर्गेषु=गिरिदुष्करेषु स्थानेषु। भ्रान्तं=भ्रमणम्। वरं=किञ्चित् प्रियम्। किन्तु मूर्खजनसम्पर्कः—मूर्खाश्च ते जनाः मूर्खजनाः, मूर्खजनानां सम्पर्कः मूर्खजनसम्पर्कः=अज्ञमानवसम्बन्धः। सुरेन्द्रभवनेषु—सुराणामिन्द्रः सुरेन्द्रः, सुरेन्द्रस्य भवनानि सुरेन्द्रभवनानि, तेषु सुरेन्द्रभवनेषु=दिव्यतरेषु महेन्द्रप्रासादादिषु। अपि न वरम्=न हि श्रेष्ठं विद्यते। अत्र तु अनुष्टुप् नामकं छन्दः वर्तते।

भावार्थः—व्याघ्रादिहिंसकैः जन्तुभिः साकं दुर्गमेषु पर्वतेषु विषमेषु वनादिकेषु भ्रमणं तु श्रेष्ठतरमस्ति, किन्तु मूर्खजनसहवासस्तु दिव्ये इन्द्रभवनेऽपि न श्रेयस्करो भवति, यतो दुर्बुद्धिभ्यो मानवेभ्यः सर्वदा अनिष्टस्याशङ्कोपतिष्ठते, न तेभ्यः कदाचित् हितकामना कर्तुं शक्यते।

भाषार्थ—मूर्खसंगति की निन्दा करते हुए कवि कहता है—दुर्गम पहाड़ों पर जङ्गली पशुओं के साथ विचरना अच्छा है, किन्तु दिव्य इन्द्रभवन में भी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मूर्खों का सङ्ग अच्छा नहीं, क्योंकि उनसे सर्वदा अनिष्ट की ही आशङ्का बनी रहती है ॥ १४ ॥

अथेदानीं कवीन्द्राणामनादरो राज्ञो जडत्वसूचक इत्याह—

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयाऽऽगमा
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः ।
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयस्त्वर्थं विनाऽपीश्वराः
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः ॥१५॥

अन्वयः—शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः, शिष्यप्रदेयागमाः, विख्याताः कवयः यस्य प्रभोः विषये निर्धनाः (सन्तः) वसन्ति, तत् वसुधाधिपस्य जाड्यम् । कवयस्तु अर्थं विना अपि ईश्वराः (सन्ति), हि कुपरीक्षकाः कुत्स्याः स्युः यैः मणयः अर्घतः पातिताः ।

व्याख्या—शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः-शास्त्रैः=व्याकरणादिभिः, उपस्कृता =अलङ्कृताः, शुद्धाः, शब्दाः, सुन्दराः=मनोहरा, गिरो=वचनानि, येषां ते शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः=व्याकरणानुकूलरमणीयवाचः । शिष्यप्रदेयागमाः- शिष्येभ्यः=अन्तेवासिभ्यः, प्रदेया=व्याख्यानरूपेण प्रदातुं योग्या, आगमाः= शास्त्राणि, येषां ते शिष्यप्रदेयागमाः=शिक्षणीयशिक्षादीक्षिताः । विख्याताः= लब्धकीर्तयः । कवयः=कविजनाः । यस्य प्रभोः=राज्ञः । विषये=राज्ये । निर्धनाः= दरिद्राः सन्तः । वसन्ति=तिष्ठन्ति । यत्, तत् वसुधाधिपस्य—वसुधाया अधिपः वसुधाधिपः, तस्य वसुधाधिपस्य=पृथिवीपतेः । जाड्यं=मान्द्यम्. मूर्खत्वं दोषो वा विद्यते । कवयस्तु अर्थं विनापि=धनमन्तरापि । ईश्वराः=समर्थाः, पूजनीयाः सन्ति । हि=निश्चयेन । कुपरीक्षकाः-कुत्सिताः परीक्षका इति कुपरीक्षकाः= वस्तुनो गुणदोषयोर्यथोचितां परीक्षां कर्तुमसमर्थाः पुरुषाः । कुत्स्याः=निन्दनीयाः । स्युः=भवेयुः । यैः=कुपरीक्षकैः, रत्नशास्त्रपरिज्ञानाभावात् कुत्सितपरिज्ञानिभिः । मणयः=बहुमूल्यानि रत्नानि । अर्घतः=मूल्यतः । पातिताः=न्यूनतां प्रापिताः, अल्पार्थीकृता इत्यर्थः । अत्र हि वर्तते शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

भावार्थः-राजाश्रयमाश्रित्यापि यदि कवयो निर्धनाः स्युस्तर्हि तेषां समुचितं सम्मानमकुर्वन् राजैव निन्दनीयो भवति । ततो न कापि हानिः कवीनाम् । यदि परीक्षायोग्यतामबिभ्राणाः कुपरीक्षका बहुमूल्यानां रत्नानां समुचितं मूल्यं न निर्द्धारयन्ति तर्हि तद्गुणानभिज्ञतारूपो दोषः तेषां कुपरीक्षकाणामेव भवति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रत्नानि तु निर्दोषाण्येव । अतो विदुषां निर्धनता नृपतीनामेव मूर्खतां सूचयति ।

भावार्थ—शास्त्रों के द्वारा विभूषित, शब्दों से सुन्दर वाणी बोलने वाले और शिक्षा के द्वारा शिष्यों को सदुपदेश देने वाले, प्रसिद्ध कवि जिस राजा के राज्य में गरीब होकर रहते हैं, उस राजा की ही जड़ता सूचित होती है। कवि लोग तो धन के विना भी समादरणीय हैं, क्योंकि बुरा पारखी, जौहरी ही निन्दा का पात्र होता है, जिसने रत्नों को मूल्य से गिरा दिया। अर्थात् उसका समुचित मूल्य न आँक सका। अतः जिस राजा के राज्य में कवियों का आदर नहीं, उसी का दुर्भाग्य है ॥ १५ ॥

अथ विद्याधनस्य प्रसिद्धधनवैलक्षण्यवर्णनद्वारा विदुषामुत्कर्षमापादयन् तेषां राजभिः समादरो विधेय इत्यर्थं नृपान् सम्बोधयति—

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा-
ऽप्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम् ।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः ! कस्तैः सह स्पर्धते ॥ १६ ॥

अन्वयः—यत् (विद्याख्यं धनम्) हर्तुः गोचरं न याति, सर्वदा किमपि शं पुष्णाति, अर्थिभ्यः अनिशं प्रतिपाद्यमानमपि परां वृद्धिं प्राप्नोति, कल्पान्तेष्वपि निधनं न याति, तत् विद्याख्यम् अन्तर्धनं येषां (पुंसां समीपे वर्तते) तान् प्रति हे नृपाः ! मानम् उज्झत तैः सह कः स्पर्धेत ?

व्याख्या—यत्=विद्याख्यं धनम् । हर्तुः—हरतीति हर्ता, तस्य हर्तुः=अपहारकस्य चौरादेः । गोचरं न याति=दृष्टिगतं न भवति । तथा सर्वदा=सर्वस्मिन् काले । शं=किमप्यनिर्वचनीयं सुखम् । पुष्णाति=प्रवर्द्धयति । अर्थिभ्यः=विद्यार्थिभ्यः, याचकेभ्यः । अनिशं=निरन्तरम् । प्रतिपाद्यमानमपि=दीयमानमपि, व्याख्यायमानमपि । परां=महतीम् । वृद्धिं=उन्नतिम् । प्राप्नोति=लभते । कल्पान्तेष्वपि=प्रलयकालेष्वपि । निधनं=नाशम् । न प्रयाति=न नश्यति । तत्=प्रसिद्धम् । विद्याख्यम्=विद्यानामकम् । अन्तर्धनं=आन्तरिकं गुप्तं धनम् । येषां=विदुषाम् । समीपे=पार्श्वे वर्तते । तान् प्रति=तान् विद्याधनान् प्रति, तेषां विदुषां विषये । हे नृपाः!=हे राजानः ! मानं=गर्वम् । उज्झत=त्यजत । तैः=विद्याधनैर्विद्वद्भिः । सह=साकम् । कः=कः पुरुषः । स्पर्धेत=स्पर्धां कुर्यात् ? न कोऽपीत्यर्थः । अतस्ते गौरवदानेन बहु माननीयाः । अत्रापि शार्दूलविक्रीडितमेवास्ति छन्दः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—सर्वतो विलक्षणं विद्याधनं विद्यते। न तद् व्ययेन ह्रासमेति, नापि नश्यति, प्रत्युत व्यये कृते नित्यमुत्तरोत्तरं वर्धत एव। अत एतेन धनेन धनिनो विद्वांसो राजभिः सर्वदा संरक्षणीयाः, प्रोत्साहनीयाः धनमानादिना नूनं सन्तोष्टव्याः, न कदापि अवमन्तव्याः, न वा एतेऽभिभवितुमर्हाः।

भाषार्थ—विद्वानों की प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है—जो विद्यारूपी धन चोरों को दृष्टिगत नहीं होता और अवर्णनीय कल्याणपरम्परा की पुष्टि करता है, याचकों को सदा दिये जाने पर बढ़ता है तथा जो कभी नष्ट नहीं होता, ऐसा विद्यारूपी गुप्त धन जिसके पास है, उन विद्वानों का सदा सम्मान करना चाहिए। अरे राजाओं! उनके प्रति अभिमान करना छोड़ दो, भला उनकी बराबरी कौन कर सकता है? राजा और विद्वान् में महान् अन्तर है ॥ १६ ॥

ऐश्वर्यमदान्धा राजानः आत्मनो लक्ष्म्या तत्त्वज्ञानविदुषो न लोभयितुं शक्नुवन्ति। अतस्तेषु बहुमानाचरणपरेणैव भवितव्यमिति सदृष्टान्तं राजानं सम्बोधयति कविः—

> अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् माऽवमंस्था-
> स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि।
> अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां
> न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—(हे राजन्!) अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मा अवमंस्थाः, लघु तृणम् इव लक्ष्मीः तान् नैव संरुणद्धि बिसतन्तुः अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां वारणानां वारणं न भवति।

व्याख्या—हे राजन्! अधिगतपरमार्थान्—अधिगतः=प्राप्तो ज्ञातो वा, परमार्थः=तत्त्वार्थः, यैः ते अधिगतपरमार्थाः, तान् अधिगतपरमार्थान्=विज्ञाततत्त्वार्थान्, प्राप्तपुरुषार्थान् वा। पण्डितान्—सत्यासत्यविवेकिनी बुद्धिः पण्डा, पण्डा सञ्जाताः एषामिति पण्डिताः, तान् पण्डितान्=सदसद्विवेकिनो विदुषः। मा अवमंस्थाः=नावमानय, न तिरस्कुरु। लघु=तुच्छम्। तृणमिव=घास इव। लक्ष्मीः=श्रीः, सम्पत्तिः। तान्=पण्डितान्। नैव संरुणद्धि=ईषदपि नैव संरोद्धुं शक्नोति। बिसतन्तुः=कमलनालसूत्रम्। अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां—मदस्य लेखा मदलेखा, अभिनवा या मदलेखा अभिनवमदलेखा, अभिनवमदलेखया श्यामानि=कृष्णवर्णानि, गण्डस्थलानि=कपोलभित्तयः, येषां ते अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलाः, तेषाम् अभिनवमदलेखा-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्यामगण्डस्थलानाम् । वारणानां=मदोन्मत्तानां गजानाम् । वारणं=वन्धनीय-युक्तम् । न भवति=न जायते । अत्र तु मालिनीनामकं विद्यते वृत्तम् ।

भावार्थः—ज्ञाततत्त्वार्थानां विदुषां कदाप्यवमाननं न विधेयम् । यथा अतिदुर्बलेन मृणालसूत्रेण मदोन्मत्तानां वारणानां बन्धनं न सम्भवति, तथैव निःसार-तृणतुल्यया लक्ष्म्या लोभरहिताः तात्त्विकज्ञानसम्पन्ना विद्वांसो वशीकर्तुं न शक्या भवितुमर्हन्ति । अतः पण्डितेषु बहुमानाचरणतत्परत्वेन वर्तितव्यमिति भावः ।

भाषार्थ—हे राजन् ! तत्त्वज्ञान प्राप्त किए हुए विद्वानों का अनादर मत करो । तुच्छ तिनके के समान लक्ष्मी उनको उसी प्रकार बाँध नहीं सकती, जैसे अतिसूक्ष्म कमलनाल के सूत से मदोन्मत्त हस्ती नहीं बांधा जा सकता ॥१७॥

किं वहुना कथञ्चित् कुपितेन नृपेण विदुषामनादरः सुखेन कर्तुं शक्यते, किन्तु तद्गुणवैदग्ध्यापहरणे नास्ति तस्य सामर्थ्यमिति हंसब्रह्मणोरुदाहरणव्याजेनाह—

अम्भोजिनीवनविहारविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता ।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥ १८ ॥

अन्वयः—कुपितः विधाता हंसस्य अम्भोजिनीवनविहारविलासम् एव नितरां हन्ति । तु असौ अस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां वैदग्ध्यकीर्तिम् अपहर्तुं न समर्थः (भवति) ।

व्याख्या—कुपितः=क्रुद्धः । विधाता=ब्रह्मा । हंसस्य=मरालस्य । अम्भोजिनीवनविहारविलासं–अम्भोजिन्याः=कमलिन्याः, वनमम्भोजिनीवनम्, अम्भोजिनीवने विहारः=क्रीडा, तस्य अम्भोजिनीवनविहारस्य, विलासः=आनन्दः, अम्भोजिनीवनविहारविलासः, तम् अम्भोजिनीवनविहारविलासम्=पद्मिनी-समूहक्रीडालीलाम् । एव=केवलम् । नितरां=अत्यन्तम् । हन्ति=नाशयति । तु=किन्तु । अस्य=हंसस्य । दुग्धजलभेदविधौ—दुग्धं च जलं च दुग्धजले, तयोर्भेदः दुग्धजलभेदः, तस्य विधिः दुग्धजलभेदविधिः, तस्मिन् दुग्धजलभेद-विधौ=नीरक्षीरपृथग्भावविधाने । प्रसिद्धां=प्रख्याताम् । वैदग्ध्यकीर्ति—विदग्धस्य भावः वैदग्ध्यं=चातुर्यं, वैदग्ध्यमेव कीर्तिर्यश इति वैदग्ध्यकीर्तिः, तां वैदग्ध्यकीर्तिम् । अपहर्तुं=नाशयितुम् । न समर्थः=न क्षमः भवति । अस्मिन् पद्ये वसन्ततिलकानामकं छन्दोऽस्ति ।

भावार्थः–हंसा हि क्षीरमिश्रिते नीरे नीरं विहाय केवलं क्षीरमेव गृह्णन्तीति प्रसिद्धिः । यदि केनचित् कारणेन हंसस्योपरि क्रुद्धो विधाता भवेत् तर्हि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तस्य कमलवनविहारसौकर्यमेवावरोधयितुं शक्नोति, किन्तु मिश्रितयोर्नीर-क्षीरयोः पार्थक्यकरणकलां नापहर्तुं शक्नोति। एवं नृपेण विदुषामनादरः सुकरो भवितुमर्हति परं न तद्गुणापहारः कर्तुं शक्यः। अतो विद्वत्सु निष्कोपेन भवितव्यम्।

भावार्थ—विधाता हंस पर क्रुद्ध होकर केवल उसके कमलवन में विचरण करने के सुख को नष्ट कर सकता है, किन्तु वह उसके दूध और पानी को पृथक् कर देने वाली प्रख्यात कला को नहीं मिटा सकता है। अतः किसी के स्वाभाविक गुणों को किसी प्रकार की क्षति नहीं करनी चाहिए ॥ १८ ॥

अथेदानीं विदुषां तावद् विद्यैव भूषणसम्पदित्याह द्वाभ्यां पद्याभ्याम्—

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥ १९ ॥

अन्वयः—न केयूराणि, न चन्द्रोज्ज्वला हाराः, न स्नानं, न विलेपनं, न कुसुमं, न अलङ्कृता मूर्द्धजाः पुरुषं विभूषयन्ति। या संस्कृता धार्यते सा एका वाणी पुरुषं समलङ्करोति। अखिलभूषणानि क्षीयन्ते। वाग्भूषणं सततं भूषणम् (भवति)।

व्याख्या—केयूराणि=बाहुभूषणानि। अङ्गानि न भूषयन्ति=नालङ्कुर्वन्ति। चन्द्रोज्ज्वलाः—चन्द्र इव उज्ज्वलाः चन्द्रोज्ज्वलाः=इन्दुवद्धवलाः। हाराः=मुक्तादिमणिनिर्मिता स्रजः कण्ठभूषणविशेषाः। स्नानम्=अवगाहनम्। विलेपनम्=चन्दनादिकम्। न कुसुमं=पुष्पं न। अलङ्कृताः=प्रसाधिताः। मूर्धजाः—मूर्ध्नि=मस्तके, जाताः=केशाः। वा पुरुषं=मनुष्यम्। न भूषयन्ति=नाऽलङ्कुर्वन्ति। या संस्कृता=व्याकरणादिपरिशुद्धा। धार्यते=स्वायत्तीक्रियते। सा एका=केवला। वाणी=वाक्। पुरुषं समलङ्करोति। अखिलभूषणानि=सकलालङ्काराः। क्षीयन्ते=कालक्रमेण नश्यन्ति। किन्तु वाग्भूषणम्=वागलङ्कारः। सततम्=निरन्तरम्। भूषणम्=अलङ्कारो भवति। पद्येऽस्मिन् शार्दूलविक्रीडितं नामकं छन्दोऽस्ति।

भावार्थः—यद्यपि केयूरादिकं भूषणं शरीरशोभां सम्पादयति तथापि न भवति समेषां पुंसां तेन स्थिरं सौन्दर्यम्, किन्तु एका व्याकरणादिना शुद्धा वाणी एव सार्वकालिकं सौन्दर्यं जनयतीति सैव सम्पादनीया।

भाषार्थ—न तो केयूर, न चन्द्र के समान उज्ज्वल हार, न स्नान, न चन्दनादि का लेपन, न फूल, न सँवारे हुए केशपाश ही मनुष्य को अलङ्कृत करते हैं, किन्तु वह एक वाणी, जो परिष्कृत रूप से प्रयोग की जाती है, वही मनुष्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

को भली-भाँति सजाती है, क्योंकि अन्य सब गहने नष्ट हो जाते हैं, पर वाणीरूप भूषण ही सदा स्थायी भूषण है ॥ १९ ॥

विद्याया महिमानं निरूपयन् तद्विहीनस्य पशुत्वं साधयति—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीनः पशुः ॥ २० ॥

अन्वयः—विद्या नाम नरस्य अधिकं रूपम् तथा प्रच्छन्नगुप्तं धनम् (अस्ति), विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः (अस्ति), विद्या विदेशगमने बन्धुजनः, विद्या परा देवता, विद्या राजसु पूज्यते, धनं तु न, विद्याविहीनः पशुः ।

व्याख्या—विद्या नाम=वेदशास्त्राद्यात्मकविद्यैव । नरस्य=पुंसः । अधिकं= भूयिष्ठम् । रूपमाकारविशेषः । तथा प्रच्छन्नगुप्तं–प्रच्छन्नं=निगूढं, यथा स्यात्तथा गुप्तं=रक्षितं धनमस्ति । विद्या भोगकरी—भोगान् करोतीति भोगकरी= भोगसम्पादयित्री । यशःसुखकरी–यशः=कीर्तिः, सुखमानन्दं च करोति=वितनोतीति यशःसुखकरी । गुरूणां=महताम् । गुरुः = महती । विदेशगमने = प्रवासे, परदेशयात्रायाम् । बन्धुजनः=सुहृज्जनः । परादेवता=परात्मभूता, मोक्षदायकत्वाद् । यद्वा परादेवता = स्वाभीष्टदेवता, ऐहिकामुष्मिकफलदत्वात् । राजसु= राजमध्ये । पूज्यते = प्रशस्यते । गौरवसम्पन्नत्वात् राज्यपूज्या भवति । यद्वा विद्याशब्देन विद्यावल्लक्ष्यते राजशब्देन च राजसभा लक्ष्यते । तथा च विद्यावान् राजसभासु पूज्यते = पुरस्क्रियते । धनं=द्रव्यं, तु नहि उक्तप्रकारं भवति । तस्माद् विद्यया=उक्तरूपया, विहीनः=शून्यो जनः । पशुः=पशुप्रायो भवति । कर्तव्याऽकर्तव्यादिविवेकराहित्यात् । पद्येऽस्मिन्नपि शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

भावार्थः—सर्वत्र साहाय्यसम्पादयित्री भोगैश्वर्यप्रदायिनी विद्या परमोपयोगिनी, तया विना मानवो विवेकशून्यः पशुरेव । अतः कर्तव्याऽकर्तव्यविवेकशीलत्वात् बहूपकारित्वाद्वा विशिष्टा विद्यैव प्रधानं धनं न त्वन्यदिति भावः ।

भाषार्थ— विद्या ही मनुष्य का सबसे श्रेष्ठ रूप है । छिपा हुआ सुरक्षित धन है । विद्या भोगविलास देनेवाली है तथा यश एवं सुख देने वाली है । विद्या गुरुओं का भी गुरु है । परदेश में विद्या ही बन्धुजन है, विद्या सबसे उत्कृष्ट देवता है । राजाओं के मध्य में विद्या ही पूजी जाती है, धन नहीं । इसलिए विद्या से हीन मनुष्य पशु ही है ॥ २० ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ लोकहिताहितवर्णनप्रसङ्गाद् धनापेक्षया विद्याया एव प्रकृष्टैश्वर्यंभावं तैस्तैरुदाहरणैः प्रदर्शयति—

क्षान्तिश्चेत् कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेद् देहिनां
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद् दिव्यौषधं किं फलम् ।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि
व्रीडा चेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—देहिनां क्षान्तिः चेत् (तर्हि) कवचेन किं फलम् ? क्रोधः (अस्ति) चेत् अरिभिः किम् ? ज्ञातिः चेत् अनलेन किम् ? यदि सुहृत् दिव्यैः औषधैः किम् ? यदि दुर्जनाः सन्ति सर्पैः किम् ? यदि अनवद्या विद्या अस्ति धनैः किमु ? व्रीडा चेत् भूषणैः किम् ? यदि सुकविता अस्ति (तर्हि) राज्येन किम् ?

व्याख्या—देहिनां-देहोऽस्ति येषां ते देहिनः, तेषां देहिनां=शरीरिणाम् । क्षान्तिः=क्षमा । चेत्=यदि (अस्ति तर्हि) । कवचेन=वर्मणा, लोहमयशरीराच्छादनविशेषेण । किं फलं=किं प्रयोजनम् ? अर्थात् शत्रोः प्रहारानगणयतः क्षमा शीलस्य पुंसः शरीरे रक्षकस्य कवचस्य किमपि प्रयोजनं नास्ति । क्रोधः=रोषः अस्ति चेत्तर्हि । अरिभिः=शत्रुभिः, किम् ? सर्वानर्थंकारके क्रोधे विद्यमाने किं शत्रवः तस्मादधिकमनर्थं कर्तुं प्रभवेयुः ? ज्ञातिः=दायादः । चेत्=यदि । अनलेन=पावकेन । किं प्रयोजनम्=दायादेषु विद्यमानेषु अग्नेः किं प्रयोजनम् ? यदि =चेत् । सुहृत्=मित्रम् । तर्हि दिव्यौषधैः=गुणातिशयालिभिः भेषजैः किं फलम् ? हितकारिणि मित्रे सति हितप्राप्त्यर्थं पुनरौषधिसेवनस्यावश्यकतैव नास्ति । यदि दुर्जनाः=खलाः सन्ति । तर्हि सर्पैः=भुजङ्गैः किम् ? प्राणघातो नाम सर्पाणां कार्यं तु दुर्जनैरेव सम्पाद्यते, अतो दुर्जनेषु सत्सु सर्पाणामावश्यकता नास्ति । यदि अनवद्या=निर्दोषा । विद्या=ज्ञानम् । तर्हि धनैः=वित्तैः । किमु =किं प्रयोजनम् ? विद्ययैव सर्वार्थसाधकत्वात् । व्रीडा=लज्जा । चेत् तर्हि, भूषणैः=अलङ्कारैः । किं प्रयोजनम् ? यदि सुकविता=सुन्दरं कवित्वम् । अस्ति =विद्यते । तर्हि राज्येन=लोकाधिपतित्वेन, किं प्रयोजनम् ? सत्कवितागुणे विद्यमाने राज्यं व्यर्थमेवेति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

भावार्थः—श्लोकेनानेन कविना क्षान्त्यादिभिः कवचादीनां व्यर्थत्वं प्रतिपाद्य, धनस्य गौणत्वं विद्यायाश्च मुख्यत्वमभिहितम् । यतो हि अनवद्यया विद्ययैव सर्वार्थसाधकत्वेनोत्कृष्टत्वं विद्यते इति भावः ।

भाषार्थ—मनुष्यों के पास यदि क्षमा है तो कवच से क्या लाभ ? यदि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्रोध है तो शत्रुओं से क्या ? विरादरी के लोग हों तो आग से क्या काम ? यदि मित्र हों तो उत्तम औषधों से क्या लाभ ? यदि दुर्जन हों तो सर्पों का क्या काम ? यदि निर्दोष विद्या हो तो धन से क्या काम ? यदि लज्जा हो तो गहनों से क्या मतलव ? यदि अच्छी कविता हो तो राज्य से क्या लाभ ? अर्थात् विद्या सर्वोत्कृष्ट धन है। उससे सभी वश में रहते हैं २१ ॥

अथ विदुषां गुणवर्णनपूर्वकं तेषां लोकव्यवस्थापकत्वं गुणविशेषं वर्णयति—

दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जने चार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने कान्ताजने धृष्टता
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥ २२ ॥

अन्वयः—स्वजने दाक्षिण्यं, परिजने दया, दुर्जने सदा शाठ्यम्, साधुजने प्रीतिः, नृपजने नयः, विद्वज्जने आर्जवं, शत्रुजने शौर्यम्, गुरुजने क्षमा, कान्ताजने धृष्टता (उचिता), एवं कलासु ये पुरुषाः निपुणाः (सन्ति), तेषु एव लोकस्थितिः (अस्ति) ।

व्याख्या—स्वजने=बन्धुजने । दाक्षिण्यम्=औदार्यम् । परिजने=सेवकवर्गे । दया=कृपा । दुर्जने=दुष्टे, खलजने । शाठ्यं=वञ्चकत्वम् । साधुजने=सज्जने । प्रीतिः=प्रेम । नृपजने=राजजने । नयः=नीतिः । विद्वज्जने=पण्डितेषु । आर्जवं=सरलता । शत्रुजने=वैरिषु, शौर्यम् । गुरुजने=पूज्येषु । क्षमा=सहनशीलता । कान्ताजने=स्त्रीषु । धृष्टता=प्रगल्भता । एवमनेन रूपेण, ये पुरुषाः=ये जनाः । कलासु=उक्तविद्यासु, शिल्पेषु । निपुणाः=कुशलाः सन्ति । तेषु=पुरुषेष्वेव । लोकस्थितिः=लोकमर्यादा अस्ति । त एव लोकसंस्थापकाः । एवम्भूतास्तु विद्वांस एव न त्वन्ये इति तात्पर्यम् । अत्रापि शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

भावार्थः—स्वजनादिषु विषये लोकव्यवहारोपयोगिनी दया-दाक्षिण्यादीन् गुणानवलम्ब्य लोकस्थितेः संस्थापकाः सज्जना एव मनुष्यान् विनयं शिक्षयितुं प्रभवन्ति । श्लोकोक्तासु कलासु निपुणा विद्वांस एव लोकमर्यादापालकाः सन्ति । अतो हि तेषु एव लोकस्थितिः सम्भवति ।

भाषार्थ—अपने पुत्र, कलत्र आदि सम्बन्धियों पर उदारता, सेवकों पर दया, दुर्जनों के साथ दुष्टता, सज्जनों पर प्रेम, राजपुरुषों में नीति, विद्वानों के साथ सहनशीलता, शत्रुओं के साथ शूरता, गुरुजनों के साथ सहनशीलता, स्त्रियों में प्रगल्भता आदि । इस प्रकार की कलाओं में जो लोग कुशल हैं, उन्हीं पर यह संसार टिका हुआ है ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से यथायोग्य (समुचित) व्यवहार करने की कला में जो दक्ष हैं, प्रायः लोकाचार की मर्यादा तथा स्थिति उन्हीं पर निर्भर करती है। अतः मनुष्यों को दूसरों से वही व्यवहार करना चाहिए, जिसके वे योग्य हों॥ २२ ॥

इत्थं लोकमर्यादासञ्चालकान् विद्वज्जनानुपवर्ण्य सत्सङ्गतेः श्रेयस्करत्वं तन्महिमानं च वर्णयति—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—धियः जाड्यं हरति, वाचि सत्यं सिञ्चति, मानोन्नतिं दिशति, पापम् अपाकरोति, चेतः प्रसादयति, दिक्षु कीर्तिं तनोति, (हे मानव !) कथय सत्सङ्गतिः पुंसां किं न करोति।

व्याख्या—धियः=बुद्धेः। जाड्यं=मन्दताम्। हरति=नाशयति, निरस्यति। वाचि=वचने। सत्यं=सत्यताम्। सिञ्चति=प्लावयति। मानोन्नतिं-मानस्य=आदरस्य, उन्नतिः=वृद्धिः, मानोन्नतिः, तां मानोन्नतिं=बहुमानातिशयम्। पापं=किल्बिषम्। अपाकरोति=दूरीकरोति। चेतः=चित्तम्। प्रसादयति=निर्मलयति। दिक्षु=दिशासु। कीर्तिः=यशः। तनोति=विस्तारयति। हे मनुष्य ! कथय=ब्रूहि। सत्सङ्गतिः—सतां सङ्गतिः सत्सङ्गतिः=सज्जनसमागमः। पुंसां=नराणाम्। किं कार्यं न करोति=न विदधाति। अपि तु सर्वं करोति। अत्र पद्ये वसन्ततिलकानामकं छन्दो वर्तते।

भावार्थः—सज्जनानां सहवासः नूनं हि सर्वार्थसाधको विद्यते। तेन सत्सङ्गमेन मतिमान्द्यं सूनृतवाक्यप्रयोगं समानसमृद्धि किल्विषापहारित्वं मनसः प्रसादं च कर्तुं शक्यते। अतः सज्जनैरेव सह सङ्गतिः विधेया, न तु दुर्जनैः सार्धं कदापि समागमः कार्यः।

भाषार्थ—सत्सङ्गति की प्रशंसा करते हुए भर्तृहरिजी कहते हैं कि इस विश्व में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं, जिसे मनुष्यों के निमित्त सत्सङ्ग सम्पन्न न कर सके।

सत्सङ्गति बुद्धि की मन्दता को दूर करती है, वाणी में सत्य का सञ्चार करती है, प्रतिष्ठा को ऊँचा बढ़ाती है। पाप को दूर करती है। चित्त को

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रसन्न रखती है और चारों ओर यश फैलाती है। अरे मनुष्य! बताओ सत्सङ्गति मनुष्यों के लिए क्या-क्या नहीं करती? ॥ २३ ॥

अथेदानीं कवीन्द्राणामसाधारणमहिमास्पदत्वात् तेषां लोकोत्तरत्वं सर्वोत्कृष्टत्वञ्च वर्णयन्निगमयति—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—सुकृतिनः रससिद्धाः ते कवीश्वराः जयन्ति, येषां यशःकाये जरामरणजं भयं नास्ति।

व्याख्या—सुकृतिनः=पुण्यवन्तो धन्याः। रससिद्धाः—रसेषु=शृङ्गारादि-रसेषु, पारदादिरसेषु वा, सिद्धाः=निपुणाः, पारङ्गताः। ते=प्रसिद्धाः, व्यास-वाल्मीकिकालिदासप्रभृतयो महाकवयः सिद्धसरस्वतीकाः। कवीश्वराः=कवीन्द्राः। जयन्ति=सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते। येषां=महाकवीनाम्। यशःकाये=कीर्तिकलेवरे। जरा=वार्द्धक्यं, मरणं=मृत्युः, जरा च मरणं च जरामरणे, ताभ्यां जायते इति जरामरणजम्। भयं=भीतिः। नास्ति=न विद्यते। अत्रा-नुष्टुप् छन्दो वर्तते।

भावार्थः—येषां महाकवीनां दिगन्तव्यापिनी कीर्तिकौमुदी अखिलं लोक-मजस्रं प्रसादयति ते सिद्धसरस्वतीकाः रसिकशिरोमणयः कालत्रयाभिज्ञाः कवीन्द्रवर्य्या आकल्पान्तं जयन्ति। येषां रससिद्धानां भौतिकशरीरे जरामरणजं भयं न विद्यते तर्हि किं वक्तव्यं यशःशरीरविषये, तस्य कल्पना स्थायित्वात्।

भावार्थ—वे अत्यन्त पुण्यवान् रसवर्णन में निपुण महाकवि, सर्वश्रेष्ठ एवं सदा विजयी हैं, जिनके यशरूपी शरीर को बुढ़ापे तथा मृत्यु से उत्पन्न भय नहीं है अर्थात् सरस कविता करने वाले कवीश्वर संसार से सर्वोत्कृष्ट हैं। उनके यश का कभी नाश नहीं होता है और वे जरामरणादि दुःख से नितान्त स्वतन्त्र तथा निर्भय हैं ॥ २४ ॥

ननु सकललोकशोकनिवारकस्य भगवतः विष्णोः कृपया सर्वं सम्पद्यते इति वर्णयितुमुपक्रमते—

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः
स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो निःक्लेशलेशं मनः।
आकारो रुचिरः स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं
तुष्टे विष्टपकष्टहारिणि हरौ सम्प्राप्यते देहिना ॥ २५ ॥

अन्वयः—विष्टपकष्टहारिणि हरौ तुष्टे (सति) देहिना सच्चरितः सूनुः,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सती प्रियतमा, प्रसादोन्मुखः स्वामी, स्निग्धं मित्रम्, अवञ्चकः परिजनः, निःक्लेशलेशं मनः रुचिरः आकारः विभवः, विद्यावदातं मुखं च प्राप्यते ।

व्याख्या—विष्टपकष्टहारिणि—विष्टपस्य=जगतः, कष्टानि=दुःखानि, विष्टपकष्टानि, विष्टपकष्टानि हर्तुं शीलमस्येति विष्टपकष्टहारी, तस्मिन् विष्टपकष्टहारिणि=संसारदुःखदलिनि । हरौ=विष्णौ, परमात्मनि । तुष्टे सति =प्रसन्ने सति । देहिना—देहोऽस्त्यस्येति देही, तेन देहिना=शरीरिणा, मनुष्येण । सच्चरितः—सत्=समीचीनं, चरितं यस्य स सच्चरितः=सदाचारी । सूनुः=पुत्रः । सती=साध्वी । प्रियतमा=भार्या । प्रसादोन्मुखः—प्रसादे=प्रसन्नतायाम्, उन्मुखः =तत्परः । स्वामी=प्रभुः । स्निग्धं=स्नेहयुक्तम् । मित्रं=सुहृत् । अवञ्चकः= विश्वासपात्रम् । परिजनः=सेवकवर्गः । निःक्लेशलेशं—निर्गतः क्लेशलेशो यस्मात् तत् निःक्लेशलेशम्=क्लेशरहितम् । मनः=चित्तम् । रुचिरः=सुन्दरः । आकारः=स्वरूपम् । स्थिरः=अव्ययः । विभवः=ऐश्वर्यम् । विद्यावदातं— विद्यया=ज्ञानेनावदातं=निर्मलं, विद्यावदातम् । मुखं=वदनञ्च । एतत् सर्वं सम्प्राप्यते=सम्यग्लभ्यते । अत्र शार्दूलविक्रीडितनामकं छन्दोऽस्ति ।

भावार्थः—विश्वस्मिन्नस्मिन् अखिललोकनियन्तुर्भगवतो विष्णोः प्रसन्नतयैव सत्पुत्रकलत्रमित्रादिप्राप्तिर्भवति नान्यथेति भावः ।

भाषार्थ—इस विश्व के दुःख को निवारण करने वाले भगवान् विष्णु के प्रसन्न होने पर ही मनुष्य को सदाचारी पुत्र, पतिव्रता पत्नी, प्रसन्न स्वामी, स्नेही मित्र, धोखा न देने वाले सेवक, निरन्तर निश्चिन्त मन, सुन्दर स्वरूप, स्थायी सम्पत्ति, विद्या से निर्मल मुख—ये सब मिलते हैं ।। २५ ।।

मानवानां कल्याणस्य पन्थानं निर्दिशति—

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ।
तृष्णास्रोतो विभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः ।।२६।।

अन्वयः—प्राणाघातात् निवृत्तिः, परधनहरणे संयमः, सत्यवाक्यम्, काले शक्त्या प्रदानम्, परेषां युवतिजनकथामूकभावः, तृष्णास्रोतो विभङ्गः, गुरुषु विनयः, सर्वभूतानुकम्पा च; एष सर्वशास्त्रेषु अनुपहतविधिः सामान्यः श्रेयसां, पन्थाः (अस्ति) ।

व्याख्या—प्राणाघातात्—प्राणानाम्=असूनाम्, आघातो=हत्या, इति प्राणा-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घात:, तस्मात् प्राणाघातात् = प्राणपीडनात् । निवृत्तिः = विमुखता । परधन-हरणे—परेषाम् = अन्येषां, धनं परधनं, परधनस्य हरणं = लुण्ठनं, परधनहरणं, तस्मिन् परधनहरणे = अन्यद्रव्यलुण्ठने । संयमः = अप्रवृत्तिः । सत्यवाक्यं—सत्यं वाक्यमिति सत्यवाक्यम् = यथार्थभाषणम् । काले = योग्ये समये । शक्त्या = स्वसामर्थ्यानुसारम् । प्रदानम् = धनादिवितरणम् । परेषाम् = अन्येषां पुरुषाणाम् । युवतिजनकथामूकभावः—युवतिजनानां कथा युवतिजनकथा, युवतिजनकथासु = परस्त्रीविषयकवार्तासु । मूकभावः = मौनम् । तृष्णास्रोतोविभङ्गः—तृष्णायाः स्रोतः तृष्णास्रोतः, तस्य विभङ्गः तृष्णास्रोतोविभङ्गः = लोभप्रवाहावरोधनम् । गुरुषु = पूज्येषु । विनयः = नम्रता । सर्वभूतानुकम्पा—सर्वेषु भूतेषु अनुकम्पा सर्वभूतानुकम्पा = अखिलप्राणिदया । एषः = अयम् । सर्वशास्त्रेषु—सर्वाणि च तानि शास्त्राणि सर्वशास्त्राणि, तेषु सर्वशास्त्रेषु = निखिलागमेषु । अनुपहतविधिः—अनुपहतः = अक्षुण्णः, विधिः = विधानं, यस्य स अनुपहतविधिः = अनुस्यूतविधानः । सामान्यः = सकलजनसाधारणः । श्रेयसाम् = कल्याणानाम् । पन्थाः = मार्गः अस्ति । श्लोकेऽस्मिन् स्रग्धरानामकं छन्दोऽस्ति ।

भावार्थः—प्राणिनां पीडनात् विमुखता, परधनलुण्ठनादप्रवृत्तिः, सत्यवादित्वं, समये शक्त्यनुसारं धनवितरणं, परस्त्रीचर्चातो वैरस्यं, पूज्ये नम्रता, सर्वेषु प्राणिषु दयासञ्चारश्चेत्यादीनि मानवं कल्याणमार्गे प्रापयन्ति ।

भाषार्थ—जीवहिंसा से पृथक् रहना, दूसरे के धन के हरण से मन को रोकना, सत्यभाषण करना, समय के अनुसार सत्पात्र को दान देना, दूसरों की स्त्रियों की चर्चा से विमुख रहना, लोभ के प्रवाह को रोकना, गुरुजन के प्रति नम्रता का व्यवहार करना तथा सब प्राणियों पर दया करना—यही सब शास्त्रों में उचित जनसाधारण के कल्याण का मार्ग है, जिनका विधान शास्त्रों में किया गया है ।। २६ ।।

अधम-मध्यमोत्तमानां सर्वेषां मानवानां कार्यसम्पादनसमये या स्थितिर्भवति तां स्पष्टयति—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ।। २७ ।।

अन्वयः - नीचैः विघ्नभयेन न प्रारभ्यते खलु, मध्याः प्रारभ्य विघ्नविहताः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विरमन्ति, उत्तमजना विघ्नैः पुनः पुनः प्रतिहन्यमाना अपि प्रारब्धं न परित्यजन्ति ।

व्याख्या—नीचैः=अधमैः पुरुषैः । विघ्नभयेन—विघ्नेभ्यो भयं विघ्नभयं, तेन विघ्नभयेन=प्रत्यूहभीत्या । न प्रारभ्यते=कार्यारम्भ एव न क्रियते । खलु=किल । मध्याः=मध्यमस्थितिकाः साधारणजनाः । प्रारभ्य=कार्यारम्भं कृत्वा । विघ्नविहताः—विघ्नैः=प्रत्यूहैः, विहताः=पीडिताः सन्तः । विरमन्ति=कार्यारम्भं परित्यजन्ति । उत्तमजनाः=श्रेष्ठगुणाः पुरुषाः । विघ्नैः=प्रत्यूहैः । पुनः पुनः=भूयो भूयो, वारं वारम् । प्रतिहन्यमाना अपि=आक्रान्ता अपि । प्रारब्धं=उपक्रान्तम् । कर्म न परित्यजन्ति=नोपेक्षन्ते, अपितु सर्वदा कुर्वन्त्येव । अत्र वसन्ततिलकावृत्तं विद्यते ।

भावार्थः—यथा विश्वस्मिन् उत्तम मध्यम-अधमभेदेन पुरुषाः त्रिविधा भवन्ति, तथैव तेषां कार्यमपि त्रिविधमेव भवति । तत्राधमपुरुषाः खलु विघ्नसम्भावनया कार्यमेव नारभन्ते । मध्यमाः किञ्चित् कार्यं प्रारभ्यापि मध्ये विघ्नोपस्थित्या तस्मात् कार्याद् पराङ्मुखा भवन्ति । किन्तूत्तमा मानवाः समागतमपि विघ्नप्रहारमविगणय्य कार्यं पूर्णं कृत्वैव विश्रान्तिं लभन्ते ।

भाषार्थ—जैसे संसार में तीन तरह के मनुष्य होते हैं—अधम, मध्यम और उत्तम, उसी प्रकार उनके कार्य भी तीन तरह के होते हैं । अधम लोग विघ्नों के भय से किसी कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करते, मध्यम श्रेणी के मनुष्य कार्य शुरू कर के बीच में विघ्नों के आ जाने पर उनसे दुःखी होकर रुक जाते हैं, किन्तु उत्तम प्रकृति के लोग बार-बार विघ्नों के प्रहार पड़ने पर भी आरम्भ किये कार्य को नहीं छोड़ते, प्रत्युत उसे पूरा करके ही दम लेते हैं ॥ २७ ॥

अथ दीनहीनदशामभ्युपेता अपि सज्जनाः महद्भिरनुष्ठितं मार्गमेवावलम्बन्ते इत्याह—

असन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम् ।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ? ॥ २८ ॥

अन्वयः—असन्तः न अभ्यर्थ्याः, कृशधनः सुहृदपि न याच्यः, प्रिया न्याय्या वृत्तिः (आश्रयणीया), असुभङ्गे अपि मलिनम् असुकरम्, विपदि उच्चैः स्थेयम्, महतां च पदम् अनुष्ठेयम्, इदं विषमम् असिधाराव्रतं सतां केन उद्दिष्टम् ?

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—असन्तः—न सन्तः असन्तः=दुर्जनाः। न अभ्यर्थ्याः=न प्रार्थनीयाः। कृशधनः—कृशं धनं यस्य स कृशधनः=क्षीणवित्तः। सुहृदपि=मित्रमपि। न वाच्यः=नाभ्यर्थनीयः। प्रिया=सन्तोषकारिणी। न्याय्या=न्यायोपेता। वृत्तिः=जीविका, आश्रयणीया। असुभङ्गे=प्राणान्तकालेऽपि। मलिनं=निन्द्यं कर्म। असुकरं=कर्तुमशक्यं, दुष्करं वा। विपदि=विपत्तौ। उच्चैः=अदीनम्, उन्नतं च यथा स्यात्तथा। स्थेयं=वर्तितव्यम्। च=अपि च। महतां=महापुरुषाणाम्। पदं=पदवीम्। अनुविधेयम्=अनुवर्तनीयम्। इदम्=पूर्वोक्तरूपम्। विषमम्=दुष्करं, क्लेशकरं वा। असिधाराव्रतम्—असिधारावद् व्रतमिति असिधाराव्रतम्=तीक्ष्णतरो नियमः। सताम्=सत्पुरुषाणाम्। केन=पुरुषेण। उद्दिष्टम्=उपदिष्टम्। अत्रास्ति शिखरिणी वृत्तम्।

भावार्थः—एष एवास्ति सज्जनानां स्वभावः यत्ते कस्यामप्यवस्थायां दुर्जनान् नाश्रयन्ते किन्तूच्चविचारपद्धतिमवलम्बमाना उच्चपद्धत्यैव तिष्ठन्ति, न कथमपि मलिनं कार्यं स्वीकुर्वन्ति, प्राणपणेनापि इदमसिधाराव्रतं पालयन्त्येव ते।

भाषार्थ—सज्जनों को इस कठोर असिधारा व्रत का किसने उपदेश दिया है? जिसमें दुर्जनों से प्रार्थना नहीं करनी, अल्प धनवाले प्रिय मित्र से याचना नहीं करनी, प्रिय एवं न्यायसंगत व्यवहार करना, प्राणों का विनाश उपस्थित होने पर भी निन्दनीय कर्म करना सहज नहीं, विपत्ति में भी उच्च बनकर रहना तथा महापुरुषों के मार्ग का अनुगमन करना, जिससे वे कभी विचलित नहीं होते ॥ २८ ॥

ननु मानी मनुष्यः कृच्छ्रावस्थामुपगतोऽपि स्वमहत्त्वापहारिणी दीनां हीनां वा दशां नावलम्बते इति सिंहोदाहरणेन दर्शयति—

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्राणोऽपि कष्टां दशा-
मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरिति प्राणेषु नश्यत्स्वपि।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भपिशितग्रासैकबद्धस्पृहः
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ? ॥ २९ ॥

अन्वयः—क्षुत्क्षामः अपि, जराकृशः अपि, शिथिलप्राणः अपि, कष्टां दशाम् आपन्नः अपि, विपन्नदीधितिः अपि, मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भपिशितग्रासैकबद्धस्पृहः मानमहताम् अग्रेसरः केसरी प्राणेषु नश्यत्सु अपि जीर्णं तृणम् अत्ति किम् ?

व्याख्या—क्षुत्क्षामः—क्षुधा क्षामः क्षुत्क्षामः=बुभुक्षया क्षीणोऽपि। जराकृशः—जरया कृशः जराकृशः=वार्द्धक्यदुर्बलः, जर्जरशरीरो वा। शिथिलप्राणः—शिथिलः=न्यूनः, प्राणोऽसूर्यस्य स शिथिलप्राणः=क्षीणशक्तिः अपि। कष्टां=

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कष्टकारिणीम् । दशाम्=अवस्थाम् । आपन्नोऽपि=प्राप्तोऽपि । विपन्नदीधितिः-विपन्ना=नष्टा, दीधितिः=कान्तिर्यस्य स विपन्नदीधितिः=क्षीणकान्तिर्विगतशोभः । मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भपिशितग्रासैकबद्धस्पृहः—मत्ता ये इभेन्द्राः मत्तेभेन्द्राः, तेषां विभिन्ना ये कुम्भा मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भा, मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भानां पिशितं मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भपिशितं, तस्य ग्रासः मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भपिशितग्रासः, तस्मिन् एकं=केवलं, बद्धा=नियता, स्पृहा=इच्छा, यस्य स तथाभूतः । मानमहतां—मानेन महान्तो मानमहान्तः, तेषां मानमहताम्=स्वाभिमानोत्कृष्टानाम् । अग्रेसरः—अग्रे सर्तुं शीलमस्येति अग्रेसरः=अग्रणीः । केसरी=सिंहः । प्राणेषु=असुषु । नश्यत्सु अपि=क्षीयमाणेष्वपि, प्राणप्रयाणे सम्प्राप्ते सति । जीर्णं=पुरातनं, शुष्कम् । तृणं=घासम् । अत्ति=खादति किम् ? नाभ्यवहरतीत्यर्थः । अत्र शार्दूलविक्रीडितं छन्दो विद्यते ।

भावार्थः—यथा जरया जर्जितदेहः मरणासन्नोऽपि केसरी स्वहतैरेव हस्तिभिः जीवनं निर्वाहयन् न कदापि शुष्कं शष्पमत्ति, तथैव कष्टकारिणीमवस्थामुपगतोऽपि मानी मनुष्यः स्वीयं पुरातनं सत्त्वगुणं संस्मरन् न कदापि क्षुद्रां वृत्तिमाश्रयते । नीचजनस्तु नैवमिति भावः । तथा च पूर्वोक्ताखिलविशेषणविशिष्टोऽपि गजेन्द्रमेदःकवलनकृतप्रतिज्ञः सिंहो न नीचवस्तुनि प्रवर्तते । इति महती मानशौर्यपराकाष्ठागर्वोक्तिर्मन्तव्या । कुलक्रमागतोत्तमशीलपरिशीलनं मानः, सहायमनपेक्ष्य शत्रुसंहरणसामर्थ्यं शौर्यमिति विवेकः ।

भाषार्थ—भूख से व्याकुल, बुढ़ापे के कारण दुबला बलहीन पड़ा, कष्ट देने वाली दशा को प्राप्त, क्षीणकान्ति, मस्त गजराज के फाड़े हुए मस्तक के मांस को खाने की इच्छा रखनेवाला एवं बड़े-बड़े मानियों में अग्रगण्य सिंह क्या सूखा तृण खाता है ? अर्थात् कभी नहीं खाता ॥ २९ ॥

पूर्वोक्तमेवार्थं पुनः सिंहस्य चोदाहरणप्रदर्शनपूर्वकं भङ्ग्यन्तरेण समर्थयति-

स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थि गोः
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये ।
सिंहो जम्बुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—श्वा स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं, निर्मांसम् अपि गोः अस्थि लब्ध्वा परितोषम् एति, तु तत् तस्य क्षुधाशान्तये न (अस्ति), सिंहः अङ्कम् आगतमपि जम्बूकं त्यक्त्वा द्विपं निहन्ति । कृच्छ्रगतोऽपि सर्वः जनः सत्त्वानुरूपं फलं वाञ्छति ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—श्वा=शुनकः। स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनम्—स्वल्पयोः=लेशमात्रयोः, स्नायुवसयोः—स्नायुः=वस्नसाख्यनाडीभेदः, वसा=मेदः, अवशेषः, तेन मलिनं=दूषितम् इति स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनम्। निर्मांसं=मांसलेशशून्यमपि। गोः=पशोः। अस्थि=कीकसम्। लब्ध्वा=सम्प्राप्य। परितोषं=प्रसन्नताम्। एति=प्राप्नोति। तु=किन्तु। तत्=निर्मांसमस्थि। तस्य=शुनः। क्षुधाशान्तये=बुभुक्षानिवृत्तये। न=नैव भवति। सिंहः=मृगराजः। अङ्कम्=उत्सङ्गम्। आगतमपि=समीपवर्तिनमपि। जम्बूकं=शृगालम्। त्यक्त्वा=विहाय। द्विपं=हस्तिनमेव। दूरस्थमपि, निहन्ति=विदारयन्ति। तथा हि कृच्छ्रगतोऽपि=अतिसङ्कटस्थोऽपि। सर्वो जनः=सकलो मनुष्यः। स्वत्त्वानुरूपं–स्वत्त्वस्यानुरूपं स्वत्त्वानुरूपम्=स्वशक्त्यनुकूलम्। फलं=लाभम्। वाञ्छति=इच्छति। अत्रापि शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

भावार्थः—यथा कुक्कुरो मांसरहितं शुष्कं स्वल्पमप्यस्थि प्राप्य लेलिहानः सन्तोषमेति यथा वा मृगेन्द्रः समीपस्थमपि शृगालं परिहाय दूरस्थं गजमेव मारयति, तथैव अतिसङ्कटावस्थां गता अपि मानवाः स्वशक्त्यनुकूलमेव कार्यमारभन्ते, न तु दुर्वलाः प्रकृष्टफलकाङ्क्षिणो भवन्ति, न वा प्रवला निकृष्टं फलमपेक्षन्ते। अतः श्वसिंहदृष्टान्तेन मानवैः नीचानीचवस्तुपरिग्रहतत्परैर्भवितव्यमिति तात्पर्यम्।

भावार्थ—इस संसार में सभी प्राणी अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही कार्य करते हैं। जैसे—कुत्ता नस और चर्बी के मिलाव के कारण मैली एवं मांस-रहित हड्डी के टुकड़े को पाकर सन्तुष्ट हो जाता है। यद्यपि वह उसकी भूख को मिटाने के लिए पर्याप्त नहीं है। किन्तु शेर अपने पास आये हुए गीदड़ को छोड़कर दूरस्थ हाथी को ही मारता है। इसलिए विपत्तिग्रस्त होने पर भी प्राणी अपने पौरुषबल के अनुरूप ही फल को चाहते हैं॥ ३०॥

अथेदानीमाश्रयदातुरग्रे उत्तमाधमयोर्व्यवहारप्रदर्शनपुरःसरमुदाहरणं प्रदर्शयति—

लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातं
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते॥ ३१॥

अन्वयः—श्वा पिण्डदस्य (पुरतः) लाङ्गूलचालनम्, अधः चरणावपातम्, भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च कुरुते। गजपुङ्गवः तु (पिण्डदस्य पुरतः) धीरं विलोकयति चाटुशतैः च भुङ्क्ते।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—श्वा=सारमेयः। पिण्डदस्य—पिण्डं=भोजनं, ददादीति पिण्डदः, तस्य पिण्डदस्य=भोजयितुः। पुरतः, लाङ्गूलचालनं—लाङ्गूलस्य=पुच्छस्य, चालनं लाङ्गूलचालनं, तद् लाङ्गूलचालनम्=पुच्छविवर्तनम्। अधः=नीचैः। चरणावपातं—चरणयोः अवपातं चरणावपातं, तद् चरणावपातम्=पादयोः पतनम्। भूमौ=पृथिव्याम्। निपत्य=पतित्वा। वदनोदरदर्शनं—वदनं चोदरं चेति वदनोदरे, तयोः दर्शनं वदनोदरदर्शनम्=मुखजठरप्रदर्शनम्। कुरुते=विधत्ते, निजनीचचेष्टामाविष्कुरुते। गजपुङ्गवस्तु—पुमान् गौः पुङ्गवः=वृषभः, स एव पुङ्गवः=श्रेष्ठः, गजानां गजेषु वा पुङ्गवः गजपुङ्गवः=हस्तिश्रेष्ठः। तु=पुनः। पिण्डदस्य=बलिप्रदस्य। पुरतः, धीरं=गम्भीरं, यथा स्यात्तथा। विलोकयति=पश्यति। चाटुशतैः=अनेकप्रियोक्तिभिः, बहुभिरभ्यर्थनोपचारैश्च। भुङ्क्ते=अभ्यवहरति, गुडतण्डुलादिकम्। वसन्ततिलका छन्दोऽत्र वर्तते।

भावार्थः—यथा सारमेयः भोजनदातुः पुरस्तात् तदग्रे निपत्य पुच्छं चालयद् वदनमुदरं च प्रदर्शयन् स्वां प्रसन्नतामभिव्यनक्ति, तथैव अधमप्रकृतिको मानवः आश्रयदातुरग्रे क्षुद्रतां व्यञ्जयन् तदनुकूलमेवाभिभाषते। किन्तूत्तमप्रकृतिकाः श्रेष्ठतमा मानवा बहुभिरनुनयवाक्यैरनुकूलितगजाभ्यवहरणमिव सस्नेहं गम्भीरतामात्रमेव व्यनक्ति।

भाषार्थ—कुत्ता टुकड़ा देनेवाले के सामने दुम हिलाता है, नीचे पैरों पर गिरता है, पुनः पृथ्वी पर लेटकर अपना मुँह तथा पेट दिखाता है। परन्तु गजराज भोजन देनेवाले की ओर बड़ी गम्भीरता से देखता है और सैकड़ों खुशामदों के बाद खाता है। इस प्रकार इस पद्य में उत्तम तथा अधम प्राणी का बहुत ही सुन्दर निदर्शन है। क्षुद्र मनुष्य आश्रयदाता के समक्ष अनेक चाटुकारियाँ करता है, किन्तु उत्तम प्राणी गजराज के समान अन्नदाता के सामने किसी प्रकार की दीनता न दिखाकर केवल गम्भीर रहता है तथा मान एवं सम्मान के साथ जीवन व्यतीत करता है ॥ ३१ ॥

अथ मानशौर्यसम्पन्नतया वंशोन्नतिकारकस्यैव मानवमणेः जन्मनो लाभः सफलः न त्वन्यस्येति निरूपयति—

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—परिवर्तिनि संसारे कः वा न मृतः, कः वा न जायते। स जातः येन जातेन वंशः समुन्नतिं याति।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—परिवर्तिनि=परिवर्तनशीले, धर्माधर्मवशात् पौनःपुन्येन विवर्तमाने। संसारे=जगति, अस्मिन् जन्ममरणरूपसंसारचक्रे। को वा पुमान् मृतः=प्रेतः। न जायते=नोत्पद्यते (अपि तु सर्वोऽप्युत्पन्नो म्रियते एव)। किन्तु सः=पुरुषः। जातः=उत्पन्नः, जन्मलाभवान्। येन जातेन=उत्पन्नेनैव पुंसा। वंशः=कुलम्। समुन्नतिं=वृद्धि, महदौन्नत्यम्। याति=प्राप्नोति। अत्रास्ति अनुष्टुप् छन्दः।

भावार्थः—जगदिदं जन्मनो मरणस्य च क्षेत्रमस्ति तथा प्रतिक्षणमेवात्र भवतः जन्ममृत्यू। परं तस्यैव पुंसः जन्म सफलं भवति येनात्मनो वंशस्य वृद्धिर्भवति। अतः किमन्यैः अजागलस्तनवत् उत्पन्नैः मशकवत् विनश्वरशीलैश्चेति भावः।

भाषार्थ—इस परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं मरता तथा कौन नहीं जन्म लेता है। किन्तु वास्तव में पैदा वही होता है, जिसके जन्म लेने से खानदान की उन्नति होती है। यों तो इस अस्थिर विश्व में हमेशा जीवों का जन्म और मरण होता ही रहता है, पर उसी का जन्म सफल है, जिससे वंश की वृद्धि होती है॥ ३२॥

कुसुमस्तबकदृष्टान्तेन मनस्विनो गतिद्वयमाह—

कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा॥ ३३॥

अन्वयः—मनस्विनः कुसुमस्तबकस्य इव द्वयी वृत्तिः (भवति), सर्वलोकस्य मूर्ध्नि वा (तिष्ठति) वने एव शीर्यते।

व्याख्या—मनस्विनः=विचारवतः धीरस्य, मानशौर्यशालिनः पुरुषस्य। कुसुमस्तबकस्येव—कुसुमस्य, स्तबकः=गुच्छः, समूहो वा कुसुमस्तबकः, तस्य कुसुमस्तबकस्य=पुष्पगुच्छस्य। इव=यथा, यद्वा कुसुमस्तबकस्यैवेत्येकं पदम्। द्वयी=द्विविधा। वृत्तिः=वर्तनम्। यद्वा द्वे गती हि मनस्विनः इति वा पाठान्तरम्। सर्वस्य, लोकस्य। मूर्ध्नि=मस्तके वा तिष्ठति। वने वा=अरण्ये वा। एव शीर्यते=जीर्यते। अत्राप्यनुष्टुप् वृत्तम्।

भावार्थः—यथा पुष्पगुच्छो मानवानां शिरःसु धार्यतेऽथवा वने एव जीर्णं शीर्णं वा भवति, तथैव मनस्वी मानवो निखिलेभ्य उच्चैः तिष्ठति यद्वा अरण्ये गत्वा तपश्चरणपूर्वकं नैजं जीवनं परिहरति। इयमेव मनस्विनो मानधनस्य पुंसः श्रेयस्करी उभयी वृत्तिः। अर्थात् शौर्यादुन्नतस्थानस्थितिः तदलाभे मानादरण्ये शीर्णता इति विवेकः।

भाषार्थ—जैसे फूल के गुच्छे या तो सबके शिर पर चढ़ते हैं या वन में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मुरझाकर झड़कर बिखर जाते हैं–नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, वैसे ही मनस्वी पुरुषों की दो गतियाँ होती हैं—या तो वे समाज में सर्वोन्नत स्थान प्राप्त करते हैं या समाज से दूर रहकर वन में (एकान्त स्थान में) अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अर्थात् फूलों के गुच्छों के समान ही स्वाभिमानी मनस्वी पुरुषों की भी दो तरह की स्थिति होती हैं ॥ ३३ ॥

अथ भूयोऽप्युक्तोभयगुणवैशिष्टयस्यैवोत्कृष्टतां प्रदर्शयति राहुसोमसूर्याणामुदाहरणमुखेन—

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः सम्भाविताः पञ्चषा-
स्तान् प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ।
द्वावेव ग्रसते दिवाकरनिशाप्राणेश्वरौ भास्वरौ
भ्रातः ! पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषाकृतिः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे भ्रातः ! पश्य बृहस्पतिप्रभृतयः अन्ये अपि पञ्चषाः सम्भाविताः (ग्रहाः) सन्ति, किन्तु विशेषविक्रमरुचिः शीर्षावशेषाकृतिः दानवपतिः एष राहुः तान् प्रति न वैरायते, भास्वरौ द्वौ दिवाकरनिशाप्राणेश्वरौ एष पर्वणि ग्रसते।

व्याख्या—हे भ्रातः !=हे मनुष्य ! पश्य=विलोकय । बृहस्पतिप्रभृतयः=देवगुर्वादयः, भौम-बुध-गुरु-शुक्र-शनिरूपाः । अन्येऽपि=इतरेऽपि । पञ्चषाः=पञ्च षड् वा । सम्भाविताः=श्रेष्ठा ग्रहाः । सन्ति=वर्तन्ते । किन्तु विशेषविक्रमरुचिः–विशेषे=बलाधिके, विक्रमः=शौर्यः, तत्र रुचिः=अभिलाषो, यस्य सः विशेषविक्रमरुचिः=बलाधिकशौर्याभिलाषः । शीर्षावशेषाकृतिः—शीर्षं=शिर एव अवशेषः=अवशिष्टभागो, यस्याः सा शीर्षावशेषा आकृतिर्यस्य स शीर्षावशेषाकृतिः=शिरोमात्रावशिष्टाकारः । दानवपतिः—दानवानां पतिरिति दानवपतिः=दनुजानां स्वामी । राहुः=स्वर्भानुः, सैंहिकेयः । तान् प्रति=पञ्चषान् ग्रहान् प्रति । न वैरायते=वैरं न करोति । भास्वरौ=प्रकाशमानौ । दिवाकरनिशाप्राणेश्वरौ–दिवा करोतीति दिवाकरः, निशायाः प्राणेश्वरः निशाप्राणेश्वरः दिवाकरश्च निशाप्राणेश्वरश्चेति दिवाकरनिशाप्राणेश्वरौ, तौ दिवाकरनिशाप्राणेश्वरौ=सूर्यचन्द्रमसौ । एष राहुः पर्वणि=अमायां पूर्णिमायां च । ग्रसते=आक्रमते, आच्छादयतीति भावः । पद्येऽस्मिन् शार्दूलविक्रीडितनामकं छन्दो विद्यते ।

भावार्थः—यथा मानी जीवः बलिष्ठेष्वेवात्मनः प्रभावं दर्शयति न च लघुषु किञ्चित् विधत्ते, तथैव महाभिमानी राहुः अमावस्यायां सूर्यं पूर्णिमायां च चन्द्रमसमेवाक्रमते, न तु शनि भौम-बुध-गुरु-शुक्रान् । तथा च शिरोमात्रावशि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एव स यदीदृशं दुर्धर्षं कार्यं करोति चेत्तर्हि सम्पूर्णाङ्गश्चेत् किन्न कुर्यात्। मानशौर्यशालिनो हि न निजाङ्गवैकल्यं गणयन्ति, किन्तु महत्कार्यमेव कर्तुं व्यवस्यन्तीति तात्पर्यम्।

पुरा किल समुद्रमन्थनानन्तरं देवानाममृतप्रदानावसरे सूर्यचन्द्रद्वारा सङ्केतितो मोहिनीरूपधारी भगवान् विष्णुः स्वचक्रेण राहोः शिरश्चकर्त। एवं विष्णुचक्रेण छिन्नशीर्षत्वात् शिरोमात्रावशिष्टगात्रसैंहिकेयो राहुः पुरातनं वैरमभिसन्धाय सर्वदा पर्वणि ग्रसते सूर्याचन्द्रमसौ—इति पौराणिकी कथा अत्राऽनुसन्धेया।

भाषार्थ—अरे भाई ! देखो, यद्यपि बृहस्पति आदि दूसरे पाँच-छह प्रतिष्ठित ग्रह हैं, किन्तु विशेष पराक्रम में रुचि रखनेवाला दैत्यराज राहु, जिसका आकार केवल शिरमात्र शेष रह गया है, उन अन्य ग्रहों से कभी भी वैर नहीं करता, किन्तु प्रकाशमान सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों को ही अमावस्या एवं पूर्णिमा पर्व में हमेशा आक्रमण करता रहता है। इस प्रकार पराक्रमशाली व्यक्ति अन्य लोगों की उपेक्षा कर महान् वलशाली शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं ॥ ३४ ॥

अथ महतां माहात्म्यमाह—

वहति भुवनश्रेणिं शेषः फणाफलकस्थितां
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स च धार्यते।
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह ! महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—शेषः फणाफलकस्थितां भुवनश्रेणिं वहति, स च कमठपतिना सदा मध्येपृष्ठं धार्यते, तम् अपि पयोधिः अनादरात् क्रोडाधीनं कुरुते। अहह ! महतां चरित्रविभूतयः निःसीमानः भवन्ति।

व्याख्या—शेषः = शेषनागः, सहस्रफणः सर्पराजः। फणाफलकस्थितां—फणा एव फलकं फणाफलकं, फणाफलके स्थिता फणाफलकस्थिता, तां फणाफलकस्थिताम् = फणापट्टिकावर्तमानाम्। भुवनश्रेणिं—भुवनानां = पातालादीनां, श्रेणिः = पङ्क्तिः, भुवनश्रेणिः, तां भुवनश्रेणिं = लोकपङ्क्तिम्। वहति = धारयति, बिभर्ति। स च = शेषनागश्च। कमठपतिना = विष्णोरवतारभूतेन आदिकूर्मेण। सदा = सर्वदा। मध्येपृष्ठम्—पृष्ठस्य मध्यमिति मध्येपृष्ठं = उदरपश्चाद्भागे। धार्यते = ऊह्यते। तमपि = कूर्मराजमपि। पयोधिः—पयांसि धीयन्तेऽस्मिन्निति पयोधिः = जलधिः। अनादरात् = लीलया अनायासेन। क्रोडाधीनं = भुजद्वया-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न्तराले अङ्कगतम् । कुरुते—विधत्ते—प्रलयकाले पातालगतभूमण्डलस्यादि- वराहावतारेण विष्णुना निजदंष्ट्रया समुद्धृतत्वादिति भावः । अहह!=आश्चर्यम्! महतां=महात्मनाम्, महानुभावानाम् । चरित्रविभूतयः=कार्यविशेषसम्पदः, माहात्म्यसम्पदः । निःसीमानः—निर्गता सीमा=मर्यादा, यस्यास्ता निःसीमानः= अवाङ्मनसगोचरा अपरिमिता भवन्ति । अत्रास्ति हरिणी वृत्तम् ।

भावार्थः—महापुरुषाणां चरित्रस्य नास्ति कश्चन पारावारः । विश्वस्मिन् सामर्थ्यस्य तारतम्यं सर्वत्र दृश्यते । यथा निजफणासु भूमेः भारं धारयन्तं भगवन्तं शेषनागं पृष्ठे प्रवहन् कूर्मराजो जलधिनाऽनायासेन निजाङ्कमारोप्यते। अतो हि केषामपि महत्त्वस्येयत्ता न निर्धारयितुं शक्यते । अतो मानशौर्यशालिनां माहात्म्यसम्पदवाङ्मनसगोचरा एवेति भावः ।

भावार्थ—भगवान् शेषनाग अपने फणों के पटल पर स्थित पातालादि लोकों को धारण करते हैं और उन्हें कच्छपराज पीठ पर सदा लिये रहते हैं। उन्हें भी समुद्र ने बिना किसी परिश्रम से अपनी गोद के अधीन कर रखा है। अहो ! महापुरुषों के चरित्रों की महत्ता का परिमाण नहीं होता । वे हमेशा विश्व का कल्याण करने में तत्पर रहते हैं ।। ३५ ।।

मानशौर्यशालिन एवोक्तविधमहत्त्वं न तु तद्विहीनस्य आपत्काले समुपस्थिते दुःखिनं स्वजनं त्यक्त्वा न कश्चन सत्पुरुषो निजप्राणरक्षायै क्वचन प्रयातीति मैनाकदृष्टान्तेन दर्शयति—

> वरं पक्षच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
> प्रहारैरुद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरुभिः ।
> तुषाराद्रेः सूनोरहह ! पितरि क्लेशविवशे
> न चासौ सम्पातः पयसि पयसां पत्युरुचितः ।। ३६ ।।

अन्वयः—तुषाराद्रेः सूनोः उद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरुभिः समदमघवन्मुक्तकुलिशप्रहारैः पक्षच्छेदः वरम्, (किन्तु) अहह ! पितरि क्लेशविवशे (सति) पयसां पत्युः पयसि असौ सम्पातः न च उचितः ।

व्याख्या—तुषाराद्रेः—तुषारस्याद्रिः तुषाराद्रिः, तस्य तुषाराद्रेः=हिमालय- पर्वतस्य । सूनोः=पुत्रस्य, मैनाकस्य । उद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरुभिः—बहुल =प्रचुरश्चासौ दहनोऽग्निः बहुलदहनोऽग्निः, तस्योद्गारः बहुलदहनोद्गारः, उद्गच्छन्=ऊर्ध्वं गच्छन्, यो बहुलदहनोद्गारः इति उद्गच्छद्बहुलदहनोद्गार- गुरुभिः=शिलासङ्घर्षजनितवह्निनिःसरणदुःसहैः । समदमघवन्मुक्तकुलिशप्रहारैः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मदेन=गर्वेण, सह वर्तमानः समदः, समदश्चासौ मघवा=इन्द्र, इति समदमघवा, तेन मुक्तं=क्षिप्तं, यत् कुलिशं=वज्रं, तस्य प्रहारा इति समदमघवन्मुक्तकुलिशप्रहाराः, तैः समदमघवन्मुक्तकुलिशप्रहारैः=सदर्पदेवेन्द्रप्रयुक्तवज्रायुधविदारणैः। पक्षच्छेदः—पक्षाणां छेदः पक्षच्छेदः=पक्षविदारणम्। वरं=श्रेष्ठम्, युक्तम्। किन्तु अहह !=कष्टम् ! पितरि=जनके हिमालये। क्लेशविवशे—क्लेशेन विवशः क्लेशविवशः, तस्मिन् क्लेशविवशे=वज्रप्रहारजनितदुःखविह्वले सति। पयसां=जलानाम्। पत्युः=स्वामिनः, समुद्रस्य। पयसि=सलिले। सम्पातः=प्रवेशः, निजप्राणरक्षार्थं निमज्ज्यावस्थानम्। न च उचितः=न्याय्यो न भवति। अत्रास्ति शिखरिणीनामकं वृत्तम्।

भावार्थः—वज्रेण पर्वतानां पक्षान् भेत्तुं प्रवृत्तं देवराजं वीक्ष्य यद् हिमालयपुत्रो मैनाकः स्वजनके समागतामापदं विलोक्याप्यात्मानं गोपायितुं समुद्राभ्यन्तरे प्रच्छन्नो जातः। तत्तस्य कृते समुचितं नासीत्, प्रत्युत तदानीं तेनेन्द्रस्य समक्षे स्थित्वा स्वपक्षच्छेदनमेव कारयित्वा पितुः साहाय्यं कर्तव्यमासीत्। यतो हि मानशौर्यसम्पन्नस्य पुंसः स्वप्राणमात्रपरित्राणतत्परया क्वचिन्निलयावस्थानमेवात्यन्तमयशस्करं भवति, निजजनके क्लेशमापन्ने तु तदत्यन्तं गर्हितं भवति। अतः स्वप्राणपरित्यागेनापि मानं शौर्यं च प्रतिष्ठापनीयम्। पुरा किल यत्र कुत्रापि पतित्वा भूमण्डलोपद्रवकारिणां सपक्षाणां पर्वतानां कोपवशात् वज्रेण पक्षच्छेदनायोद्यते शक्रे भयविह्वलो मैनाकः स्वजनकं क्लेशयुतं हिमालयं परित्यज्य समुद्रजले निमज्ज्यातिष्ठदिति पौराणिकी कथाऽत्रानुसन्धेया।

भाषार्थ—हिमालय के पुत्र मैनाक के लिए ऊपर उठती हुई प्रबल अग्नि की ज्वालाओं के कारण असह्य मदमत्त इन्द्र द्वारा छोड़े गये वज्र के आघात से पंखों का कट जाना ही उचित था, किन्तु हाय ! पिता के विपद्ग्रस्त होने पर उस मैनाक का समुद्र के जल में डूबकर छिप जाना उचित नहीं था।

अर्थात् जिस व्यक्ति को औचित्यानौचित्य का विचार नहीं है, वह सर्वथा निन्दनीय माना जाता है। अपने पिता को क्रुद्ध इन्द्र के वज्रप्रहारों से दुःखित देखकर संकट के समय छोड़कर अपनी प्राणरक्षा के निमित्त मैनाक का जाकर समुद्र में कूदकर छिप जाना ठीक नहीं था। अपने प्राण बचाने की अपेक्षा विपद्ग्रस्त पिता के समीप रहकर अपने पंखों को कटा देना ही समुचित था। स्वाभिमानी व्यक्ति गुरुजनों को सङ्कट में पड़े हुए देखकर अपनी रक्षा के लिए अन्यत्र नहीं चले जाते, किन्तु सहर्ष अपने प्राणों का बलिदान दे देते हैं ॥३६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथाचेतनोऽपि न परापकारं सहते तर्हि किमुत सचेतनः सहेतेति संदृष्टान्तं निर्दिशति—

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः ।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते ? ॥ ३७ ॥

अन्वयः—अचेतनः अपि इनकान्तः सवितुः पादैः स्पृष्टः यत् प्रज्वलति तत् तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते ?

व्याख्या—अचेतनोऽपि = चेतनरहितो, निर्जीवोऽपि । इनकान्तः = सूर्यकान्तमणिः । सवितुः = सूर्यस्य । पादैः = किरणैः । स्पृष्टः = सम्पर्कं प्राप्तः सन् । यत् = यस्मात् कारणात् । प्रज्वलति = जाज्वल्यमानो भवति । तत् = तस्मात् कारणात् । तेजस्वी — तेजोऽस्त्यस्य तेजस्वी = तेजःशाली, मानशौर्यसम्पन्नः । पुरुषः = सचेतनः । परकृतनिकृतिम्—परैः = अन्यैः, कृता = उपस्थापिता, निकृतिः = शठता, अपमानो वेति, परकृतनिकृतिः, तां परकृतनिकृतिम् = शत्रुविहितापकारम् । कथं सहते = क्षमते ? न कथञ्चिदित्यर्थः । अत्रास्ति आर्या वृत्तम् ।

भावार्थः—यथा जडोऽपि सूर्यकान्तमणिः सूर्यरश्मिभिः प्राप्तसम्पर्कः प्रज्वलति, तथैव सचेतनः तेजस्वी मानवोऽन्यकृतमपमानं न सोढुं शक्नोति, अपि तु कोपोद्रिक्तो भवति ।

भाषार्थ—जब जड़ सूर्यकान्तमणि भी सूर्य की किरणों से छू जाने पर जल उठता है तो चेतन प्राणी दूसरों के द्वारा किये गये अपमान को भला कैसे सहन कर सकेगा ? ॥ ३७ ॥

विक्रान्तत्वे नावस्था हेतुः बालोऽपि तेजस्वी पराक्रमणायैव स्पृहयते—इति सिंहशिशूदाहरणेन स्पष्टयति—

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—शिशुः अपि सिंहः मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु निपतति । सत्त्ववताम् इयं प्रकृतिः (अस्ति) खलु वयः तेजसः हेतुः न भवति ।

व्याख्या-शिशुरपि = अल्पवयस्को बालोऽपि । सिंहः = केसरी । मदमलिनकपोलभित्तिषु—मदेन = मदसलिलेन, मलिनाः = श्यामाः, कपोलभित्तयो = गण्डस्थलानि, येषां ते मदमलिनकपोलभित्तयः, तेषु मदमलिनकपोलभित्तिषु । गजेषु = हस्तिषु । निपतति = आक्रम्योपरि तिष्ठति । सत्त्ववतां = बलशालिनाम् । इयं = पूर्वोक्ता विक्रमदर्शनरूपा । प्रकृतिः = स्वभावः अस्ति । खलु = निश्चयेन ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वयः=अवस्था । तेजसः=प्रतापस्य । हेतुः=कारणं न भवति । अत्रापि पद्येऽस्ति आर्यावृत्तम् ।

भावार्थः—अल्पवयस्कोऽपि केसरी मदोन्मत्तं गजेन्द्रमाक्रम्य आत्मनः शौर्यं प्रदर्शयति, यतो हि वलशालिनां बाल्येऽपि विक्रान्तता प्रकृतिः भवति । वयो हि प्रतापशालिनाम् अत्यन्ततेजस्वित्वप्रकाशकं कारणं भवति । अतो वलवान् प्राणी शत्रुं तिरस्कृत्यैव निर्वृत्तिं लभते । तेजो हि न भवति वयः सापेक्षम्, तत्तु स्वाभाविकमेव भवति ।

भाषार्थ—शेर बच्चा होने पर भी मद से काले कपोल वाले हाथियों पर ही आक्रमण करता है । शक्तिशालियों का यही स्वभाव है । अथवा वय तेजस्विता में कारण नहीं होती । तेजस्वी आयु में चाहे छोटा ही क्यों न हो, पर वह अपने से बड़े के साथ ही प्रतिद्वन्द्विता लेने में हमेशा तत्पर रहता है, अतः सिंह का बालक छोटा होने पर भी बड़े-बड़े गजराजों के मदाङ्कित गण्डस्थलों पर ही प्रहार करता है ॥ ३८ ॥

अथेदानीं मानशौर्ययोर्निरूपणानन्तरमर्थपद्धतिं निरूपयितुं प्रवृत्तः कविः प्रथमं तावद् धनैकतत्पराणां मतमभिसन्धाय धनस्य महिमानं वर्णयति—

जातिर्यातु रसातलं गुणगणैस्तत्राप्यधो गम्यतां
शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥ ३९ ॥

अन्वयः—जातिः रसातलं यातु, गुणगणैः तत्र अपि अधः गम्यताम्, शीलं शैलतटात् पततु, अभिजनः वह्निना सन्दह्यताम्. वैरिणि शौर्ये आशु वज्रं निपततु, अर्थः नः केवलम् अस्तु, एकेन येन विना इमे समस्ता गुणाः तृणलवप्रायाः (भवन्ति) ।

व्याख्या—जातिः=ब्राह्मणत्वादिः । रसातलं=अधोलोकं, पातालम् । यातु=गच्छतु । गुणगणैः—गुणानां=धैर्यौदार्यगाम्भीर्यादीनां, गणाः=समूहाः, गुणगणाः, तैः गुणगणैः । तत्रापि=तदपेक्षया, रसातलादपि । अधः=नीचैः प्रदेशे, पाताललोके । गम्यताम्=प्रयाणं क्रियताम् । शीलं=सद्वृत्तिम् । शैलतटात्=पर्वतप्रान्तभागात् । पततु=भ्रश्यतु । अभिजनः=कुलम् । वह्निना=अग्निना । सन्दह्यताम्=भस्मीक्रियताम् । वैरिणि=सङ्क्षोभकारित्वात् शत्रुभूते । शौर्ये=पराक्रमे । आशु=शीघ्रम् । वज्रं=कुलिशम् । पततु=पतितं भवतु । अर्थः=धनम् । नः=अस्माकम् । केवलं=वित्तमेव । अस्तु=वर्तताम् । एकेन=अद्वितीयेन । येन=धनेन । विना=अन्तरेण । इमे=पूर्वोक्ताः जात्यादयः । समस्ताः=

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकलाः गुणाः । तृणलवप्रायाः—तृणस्य लेशेन सदृशाः तुच्छाः, जातिकुलशीला- भिमानादयः तृणवन्निःसारा भवन्ति । अस्मिन् श्लोकेऽस्ति शार्दूलविक्रीडि- नामकं वृत्तम् ।

भावार्थः—विश्वस्मिन् सर्वत्र वित्तस्यैवास्ति प्राधान्यम् । जात्यादीनां हा- न कापि हानिर्भवितुमर्हति । वित्तं विना जातिकुलशीलाभिमानादयः सर्वे गुणा तृणवन्निःसारा भवन्ति, धनाभावे तेषां शोभा न भवति । अतो गुणमहत्ता- अप्येतन्मूलकत्वादिदमेवार्जनीयम् । तथा चोक्तं लक्ष्मणेन भगवन्तं रामं प्रति-

'धनमर्जय काकुत्स्थ ! धनमूलमिदं जगत् ।
अन्तरं नाभिजानामि निर्धनस्य मृतस्य च ॥'

भाषार्थ—जाति चाहे पाताल में चली जाय, गुणों का समूह उससे नीचे चला जाय, सदाचार पहाड़ के तट से गिर कर चूर-चूर हो जाय, कुली- नता आग से जल जाय, शत्रुस्वरूप शौर्य पर वज्रपात हो जाय । इस प्रका- ये सभी भले ही नष्ट हो जाये, किन्तु केवल धन रह जाय, जिसके बिना सारे गुण तुच्छ तृण के समान हो जाते हैं । अतः धन की महिमा अपूर्व है

ननु गुणाभावेऽपि केवलमस्य वित्तस्य किञ्चित्करत्वमाशङ्क्य तस्यै- शेषगुणाश्रयत्वाद् धनहीनस्य पुरुषस्य विचित्रावस्थां प्रदर्शयति—

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः क्षणेन
सोऽप्यन्य एव भवतीति विचित्रमेतत् ॥ ४० ॥

अन्वयः—अविकलानि तानि इन्द्रियाणि, तत् एव नाम, अप्रतिहता बुद्धिः, तदेव वचनम्, (किन्तु) अर्थोष्मणा विरहितः स अपि पुरुषः क्ष- अन्य एव भवति इति एतत् विचित्रम् (अस्ति) ।

व्याख्या—अविकलानि—न विकलानि अविकलानि=विकाररहिता- तानि=प्रसिद्धानि । इन्द्रियाणि=चक्षुरादीनि । तदेव=प्रसिद्धम् । नाम=अ- धानम् । अप्रतिहता—न प्रतिहता अप्रतिहता=अकुण्ठिता सर्वत्र प्रसरन्ती । =पूर्वसदृशी । बुद्धिः=प्रज्ञा । तदेव=पूर्ववदेव । वचनम्=उक्तिः । अर्थोष्मणा—अर्थस्य=धनस्य, ऊष्मा=उष्णता, अर्थोष्मा, तेन अर्थोष्मणा धनमदेन । विरहितः=विमुक्तः । सोऽपि=स एव । पूर्ववदेव हस्तापाद- वयवैः सम्पन्नः । पुरुषः=मनुष्यः । क्षणेन=निमेषमात्रेण । अन्य एव=पूर्व- स्थातो भिन्न एव । भवति=सञ्जायते । इत्येतत्=पूर्वोक्तमिदम् । वि- त्रम्=आश्चर्यकरम् अस्ति । अस्मिन् पद्ये वसन्ततिलकानामकं छन्दो वर्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—विकाररहितेषु सर्वेषु इन्द्रियेषु यथावत् स्वं स्वं कार्यं कुर्वत्स्वपि मानवो धनाभावेन विचित्रां दशामनुभवन् अन्य इव प्रतीयते। अतो विश्व-कार्यस्य यथावन्निर्वाहार्थं धनस्यास्ति महती आवश्यकता।

भावार्थ—वही पहले जैसे विकाररहित इन्द्रियाँ हैं, वही काम या नाम है, वही अकुण्ठित बुद्धि, वही वाणी, मनुष्य भी वही है, परन्तु धन की गर्मी से रहित वही पुरुष क्षणभर में ही दूसरा-सा हो जाता है। यह कितने आश्चर्य की बात है ? अर्थात् यह बड़ी विचित्र बात है कि द्रव्य के नष्ट हो जाने पर मनुष्य थोड़ी देर में कुछ और का और हो जाता है। अतः धन की महिमा बड़ी महान् है ॥ ४० ॥

ननु गुणाभावेऽपि केवलवित्तस्याकिञ्चित्करत्वमाशङ्क्य गुणहीनस्यापि धनवतः प्रतिपादयति—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ ४१ ॥

अन्वयः—यस्य वित्तम् अस्ति, स नरः कुलीनः, स पण्डितः, स श्रुतवान्, स गुणज्ञः, स एव वक्ता, स च दर्शनीयः (भवति), सर्वे गुणाः काञ्चनम् आश्रयन्ति।

व्याख्या—यस्य=नरस्य समीपे। वित्तं=धनम्। अस्ति=विद्यते। स नरः=स एव मनुष्यः। कुलीनः=महाकुलप्रसूतः। स पण्डितः=प्राज्ञः। स श्रुतवान्—श्रुतं शास्त्रमस्ति अस्येति श्रुतवान्=शास्त्रज्ञः। यद्वा श्रुतं=श्रवणं, तदस्यास्तीति श्रुतवान्=धर्मशास्त्राद्याकर्णनचतुरः। स गुणज्ञः—गुणं जानातीति गुणज्ञः=गुणज्ञाता, गुणग्राही। स एव वक्ता=वाग्मी, वाक्शक्तिसम्पन्नः। स च पुनः दर्शनीयः=द्रष्टुं योग्यः। सर्वे गुणाः=सकलाः कुलीनत्वादयो गुणाः। काञ्चनं=सुवर्णम्, धनम्। आश्रयन्ति=सेवन्ते, तत्रैव निवसन्तीत्यर्थः। अस्मिन् पद्ये उपजातिवृत्तं विद्यते।

भावार्थः—कुलीनत्व-पण्डितत्व-श्रुतवत्व-गुणज्ञत्व-वक्तृत्व-दर्शनीयत्वादयः सर्वे गुणा न धनमन्तरा ख्यातिं लभन्ते, नापि प्रकाशन्ते। अतो धनेनैव मानवाः कुलीनादयो भवन्ति नूनम्। तस्मात् वित्तस्यैतावद्गुणसम्पादकत्वसम्भवादनेनैव सकलगुणसम्पत्तिसम्भवे अन्यैः प्रत्येकप्रयासैः किमपि फलं नास्तीति भावः।

भावार्थ—इस संसार में जिसके पास धन है, वही मनुष्य कुलीन है (श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न माना जाता है), वही विद्वान्, वही शास्त्रों का वेत्ता, वही गुणों का ज्ञाता, वही वक्ता तथा वही दर्शनीय है। इससे प्रत्यक्ष है कि सभी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुण कांचन (धन) में ही निवास करते हैं। अर्थात् धन के प्रभाव से मनुष्य वह बन जाता है, जो वह स्वयं नहीं है ॥ ४१ ॥

अथ द्वाभ्यामर्थस्य विनाशप्रकारं वक्तुकामः कविः इदानीं लोकस्थितिं वर्णयति—

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात् सुतो लालनात्
विप्रोऽनध्ययनात् कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रया-
न्मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात् त्यागप्रमादाद्धनम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—नृपतिः दौर्मन्त्र्यात्, यतिः सङ्गात्, सुतः लालनात्, विप्रः अनध्ययनात्, कुलं कुतनयात्, शीलं खलोपासनात्, ह्रीः मद्यात्, कृषिः अनवेक्षणात्, स्नेहः प्रवासाश्रयात्, मैत्री अप्रणयात्, समृद्धिः अनयात्, धनं प्रमादात् त्यागाच्च विनश्यति।

व्याख्या—नृपतिः—नॄन् पातीति नृपतिः, यद्वा नृणां पतिः नृपतिः=राजा। दौर्मन्त्र्यात्—दुष्टः=यथोचितमप्रयुक्तः, मन्त्रः=कार्यसिद्धिविषयको गुप्तविचारः, यस्य स दुर्मन्त्रः, तस्य भावो दौर्मन्त्र्यं, तस्मात् दौर्मन्त्र्यात्=दुर्मन्त्रसेवनात्। यद्वा दुष्टमन्त्रिणो यस्य स दुर्मन्त्री, तस्य भावः दौर्मन्त्र्यं, तस्मात् दौर्मन्त्र्यात्। यतिः=योगी। सङ्गात्=जनसम्पर्कात्। सुतः=पुत्रः। लालनात् =स्नेहाधिक्यपूर्वकं पालनात्। विप्रः=ब्राह्मणः। अनध्ययनात्=अध्ययनाभावात्। कुलं=वंशः। कुतनयात्=कुपुत्रात्। शीलं=सदाचारः। खलोपासनात्—खलानामुपासनं खलोपासनं, तस्मात् खलोपासनात्=दुष्टजनसहवासात्। ह्रीः=लज्जा। मद्यात्=मद्यपानात्। कृषिः अनवेक्षणात्=पुनः पुनः पर्यवेक्षणाभावात्। स्नेहः=प्रेम। प्रवासाश्रयात्—प्रवासे आश्रयः प्रवासाश्रयः, तस्मात् प्रवासाश्रयात्=परदेशावासात्। मैत्री=मित्रता। अप्रणयात्=स्नेहाभावात्। समृद्धिः=धनधान्यादिवृद्धिः। अनयात्=नीतिविरुद्धाचरणात्। धनं =वित्तं च, त्यागात् प्रमादाच्च। विनश्यति=विनाशं, दुरवस्थां वा गच्छति। अत्रास्ति शार्दूलविक्रीडितनामकं छन्दः।

भावार्थः—नृपतिना सदा सन्मन्त्रप्रयोगो विधातव्यः। यतिना लोकसङ्ग्रहः परिहरणीयः। पुत्रस्य समुचितं लालनं कार्यम्। विप्रेण वेदोऽध्येयः। सुपुत्रेण वंशोन्नतिः कर्तव्या। कृषेरवेक्षणं कार्यम्। अधिकदिनं परदेशे न स्थातव्यम्। सुहृद्भिः साकं स्नेहो वर्द्धनीयः। धनरक्षणकामैः सत्पात्रेभ्यो धनं वितरणीयम्। अन्यथाऽऽपदाशङ्का भवति। अतो हि मानवैः सावधानतया स्थेयम्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भाषार्थ—बुरी मन्त्रणा से राजा, विषयों में आसक्ति से योगी, अधिक प्यार करने से पुत्र, स्वाध्याय न करने से ब्राह्मण, कुपुत्र से कुल, दुष्टों के सहवास से चरित्र, मदिरा पीने से लज्जा, समय पर देखभाल न करने से खेती, अधिक दिन परदेश में रहने से स्नेह, प्रेम के न होने से मित्रता, अन्याय से ऐश्वर्य, असत्पात्र में व्यय करने से और प्रमाद से धन विनष्ट हो जाता है ॥४२॥

अथ धनस्योत्तमादिभेदेन गतित्रैविध्यं दर्शयति—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ ४३ ॥

अन्वयः—वित्तस्य दानं भोगः नाशः (इति) तिस्रः गतयः भवन्ति । यः (धनं) न ददाति, न भुङ्क्ते, तस्य तृतीया गतिः भवति ।

व्याख्या—वित्तस्य=धनस्य । दानं=सत्पात्रे त्यागो वितरणम् । भोगः=स्वीयसुखार्थे विनियोगः । नाशः=दानधर्माद्यभावे चोरादिना विलयः स्वसकाशान्निर्गमनम् इति । एवमुत्तममध्यमाधमभेदेन वित्तस्य तिस्रः=त्रिप्रकारिकाः, त्रिसंख्याकाः । गतयः=गमनोपाया अवस्था । भवन्ति=जायन्ते । यः=पुरुषः । धनं न ददाति=अर्थिभ्यो न वितरति, परार्थे न विनियुङ्क्ते । न भुङ्क्ते=नानुभवति । तस्य=दानभोगाभ्यां वित्तस्य व्ययमकुर्वतः पुरुषस्य । तृतीया गतिः=नाशावस्था, परिणामो वा । भवति=जायते । सा त्वत्यन्तकष्टदशा । अत्रार्यावृत्तं वर्तते ।

भावार्थः—धनिना पुरुषेण हि सत्पात्रेभ्यो नूनं धनं प्रदेयं, स्वोपयोगाय स्वभोगाय च उपयोक्तव्यम्, अन्यथा तस्करादिना नश्यति । अयमत्र निष्कृष्टोऽर्थः—धनस्य तावत् दानेन गतिरित्युत्तमः पक्षः, आत्मभोगार्थमुपयोग इति मध्यमः पक्षः, तस्करादिनाश इत्यधमा गतिः । अतो दानशौण्डैर्भवितव्यं धनाढ्येनेति भावः ।

भाषार्थ—धन की तीन ही दशाएँ हैं—दान, भोग एवं नाश । जो न दान देता है, न स्वयं भोग करता है, उसके धन की तीसरी गति होती है । अतः मनुष्य को सत्पात्र में धन का दान करना चाहिए अथवा स्वयं उपभोग करना चाहिए । अन्यथा उसके सञ्चित धन को चोर आदि चुराकर ले जाते हैं, या वह व्यर्थ में ही नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

अथ दानशीलस्य पुंसो मितव्ययजनिततनुत्वमपि शोभावहमित्येतदुदाहरणोपन्यासपुरःसर निरूपयति—

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिदलितो
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नराः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—शाणोल्लीढः मणिः, हेतिदलितः समरविजयी, मदक्षीणः नागः, शरदि श्यानपुलिनाः सरितः, कलाशेषः चन्द्रः, सुरतमृदिता बालवनिता, अर्थिषु गलितविभवा नराश्च (एते सर्वे) तनिम्ना शोभन्ते ।

व्याख्या—शाणः=शस्त्रोत्तेजनसाधनोपलविशेषः, तेनोल्लीढः=संघृष्टः, शाणोल्लीढः । मणिः=रत्नम् । हेतिदलितः—हेतिना दलितः हेतिदलितः= शस्त्राहतः । समरविजयी=रणशूरः । मदक्षीणः—मदेन क्षीणः मदक्षीणः= दानगर्वंकृशः । नागः=हस्ती । शरदि=शरदतौ । श्यानपुलिनाः—श्यानानि पुलिनानि यासां ताः श्यानपुलिनाः=शुष्कतटाः । सरितः=नद्यः । कला-शेषः=षोडशांशमात्रावशिष्टः । चन्द्रः=शशी । सुरतमृदिता—सुरतेन=रति-रणेन, मृदिता=शिथिलीकृतशरीरा, अथवा सुरते=रतिक्रीडायां, मृदिता= विह्वलीकृतेति सुरतमृदिता । बालवनिता—बाला वनिता बालवनिता=मुग्धा-ङ्गना । 'जारवनिता' इति पाठे तु वेश्या चोच्यते । तथा अर्थिषु=विषये याच-केषु । गलितविभवाः—गलितं विभवं येषां ते गलितविभवाः=व्यपगतार्थसम्पदः, निःशेषार्थिसात्कृतधनाः, व्ययीभूतधना वा । नराः=दातृजनाः, उदारा पुरुषाश्च । एते सर्वे तनिम्ना=तनुत्वेन । शोभन्ते=प्रकाशन्ते । एवम्भूततनुत्वस्यैव तेषां शोभाहेतुत्वात् । अत्रास्ति शिखरिणीनामकं छन्दः ।

भावार्थः—शाणोल्लीढमणिप्रभृतयो विशेषतश्चार्थिसात्कृतवित्ता उदारप्रकृतयो जनाः तनुत्वेनैव शोभामाप्नुवन्ति । अतो जगति निखिलाः पदार्थाः केनचित् महत्त्वेनैव शोभन्ते इति भावः ।

भाषार्थ—शान पर चढाकर खरीदा गया रत्न, शस्त्राहत युद्धविजेता, मद-स्रावी गजराज, शरद् ऋतु में कुछ सूख गये किनारे वाली नदी, कलामात्र शेष द्वितीया का चन्द्रमा, रतिक्रीडा में दली-मली गयी नवयौवना स्त्री; याचकों में धन व्यय करने से क्षीण वैभव दानी मनुष्य—ये सब दुबलेपन से ही शोभा पाते हैं ॥ ४४ ॥

अथावस्थानुसारं वस्तूनां मूल्यं न्यूनमधिकं वा भवतीत्याह—

परिक्षीणः कश्चित् स्पृहयति यवानां प्रसृतये
स पश्चात्सम्पूर्णः कलयति धरित्रीं तृणसमाम् ।
अतश्चानैकान्त्याद् गुरुलघुतयाऽर्थेषु धनिना-
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च सङ्कोचयति च ॥ ४५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—कश्चित् परिक्षीणः यवानां प्रसृतये स्पृहयति, पश्चात् सः सम्पूर्णः सन् (धरित्रीं) तृणसमां कलयति, अतः च अर्थेषु अनैकान्त्यात् गुरुलघुतया धनिनाम् अवस्था वस्तूनि प्रथयति सङ्कोचयति च।

व्याख्या—कश्चित्=कोऽपि, धनिकः पुरुषः। परिक्षीणः=दैवाद्दरिद्रः सन्। यवानां–धान्यविशेषाणाम्। प्रसृतये=प्रसृतिमात्रयवान् गुरुतयाऽऽकाङ्क्षते। स्पृहयति=अभिलषति। पश्चात्=कालक्रमेण। सः=परिक्षीणः पुमान्। सम्पूर्णः=समृद्धः, दैववशात्सम्पन्नः सन्। धरित्रीं=पृथिवीं, वसुन्धराम्। तृणसमां=तृणकल्पां, तुच्छाम्। कलयति=मनुते, धनमदेन तथाऽवलोकयति। अतश्च=अस्मादेव हेतोः। अर्थेषु=पदार्थेषु। अनैकान्त्यात्—एकान्तस्य भाव ऐकान्त्यं, न ऐकान्त्यम् अनैकान्त्यं, तस्मात् अनैकान्त्यात्=अनिश्चितत्वेन, अनियतरूपत्वेन। गुरुलघुतया=महत्त्वाल्पत्वभावेन। धनिनां=धनवताम्। अवस्था—उत्तमा, अधमा वा दशा। वस्तूनि=पदार्थान्। प्रथयति=विस्तारयति सङ्कोचयति च। अत्रापि शिखरिणीवृत्तं वर्तते।

भावार्थः—पदार्थानां गुरुत्वमल्पत्वं वा नियमितं नास्ति। मानवानां मूल्यमवस्था विशेषेणैव वर्द्धतेऽवक्षीयते च। धनिनां सम्बन्धिनी अवस्था वस्तूनि प्रथयति, सङ्कोचयति च। निर्धनधनिकयोरित्थम्भूताऽवस्था प्रत्यक्षसिद्धा। अतो विवेकिना नैव विपर्यस्तबुद्धिना भवितव्यमिति भावः।

भाषार्थ—जो कोई मनुष्य निर्धन होने पर मुट्ठीभर जौ के लिए हाथ पसारता है, बाद में वही धनवान् हो जाने पर दुनिया को तृण के समान तुच्छ समझने लगता है। इसलिए स्थिरता न होने के कारण धनियों की अवस्था धन की लघुता और अधिकता के कारण वस्तुओं को छोटा एवं बड़ा बनाती है। अतः मनुष्यों का छोटा या बड़ा होना परिस्थितिवश होता है। समस्त पदार्थों का लघुत्व एवं महत्त्व मनुष्यों के ऐश्वर्य और दारिद्र्य पर बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ही हुआ करता है॥ ४५॥

अथ राजानं सम्बोधयन् तस्यार्थसाधनोपायमतिदेष्टुकामनया राज्ञः प्रजानां पालनमेव सर्वार्थसाधकं दर्शयति—

राजन्! दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः॥ ४६॥

अन्वयः—हे राजन्! यदि त्वम्, एतां क्षितिधेनुं दुधुक्षसि, तेन अद्य वत्सम्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इव अमुं लोकं पुषाण। तस्मिन् च अनिशं सम्यक् परिपोष्यमाणे (सति) भूमिः कल्पलता इव नानाफलैः फलति।

व्याख्या—हे राजन् !=हे नृप ! यदि=चेत् त्वम्। एतां=त्वद्धस्तगताम् क्षितिधेनुं—क्षितेर्धेनुरिव क्षितिधेनुः, तां क्षितिधेनुं=गोसदृशीं पृथिवीम् दुधुक्षसि=दोग्धुमिच्छसि। तेन=तर्हि। अद्य=इदानीम्। वत्समिव=तर्णकमिव। अमुं लोकं=प्रजावर्गम्। पुषाण=पोषणपूर्वकं पालय। तस्मिन् च=अस्मिंश्च लोके। अनिशं=नित्यम्। सम्यक्=उत्तमप्रकारेण परिपोष्यमाणे सति। भूमिः=वसुन्धरा। कल्पलतेव=कल्पवल्लीव। नानाफलैः=अनेकप्रकारैः। फलति=सम्पूर्णा समृद्धा भवति। अस्मिन् पद्ये वसन्ततिलकानामकं वृत्तं वर्तते।

भावार्थः—पृथिवी हि रत्नगर्भा निगद्यते, तेषां रत्नानां प्राप्तये राज्ञा प्रजापालनमेव कार्यम्। यथा जीवत्स्वेव वत्सेषु गौः सम्यग् दुग्धं दातुं प्रभवति, तथैव सुखपूर्वकं वर्तमानेषु प्रजाजनेषु कृष्यादिद्वारा तेभ्यः सस्यादिफलं प्राप्तुं शक्यं नृपतिना नान्यथा। यतो हि लोकपरिपालनद्वारैव भूमेरखिलफलदोग्धृत्वं सम्भवति। तस्मादशेषार्थलाभार्थं प्रजापरिपोषणमेव न्याय्यमिति भावः।

भावार्थ—राजन् ! यदि तुम इस पृथ्वी रूपी गाय को भली-भाँति दुहने की इच्छा रखते हो तो इस समय बछड़े के समान इस प्रजावर्ग का पालन करो क्योंकि प्रजा का हमेशा अच्छी तरह पालन करने से यह पृथ्वी कल्पलता के समान विविध फलों को फलती है। अर्थात्—अच्छी तरह प्रजापालन करते ही राजा को सर्वार्थसिद्धि प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं। अतः राजा को रत्नगर्भा पृथिवी का अच्छी तरह पालन करना चाहिए॥ ४६॥

राजानं प्रति प्रजापालनावश्यकमुक्त्वेदानीं राजनीतेः स्वरूपमुदाहरणमुखेन स्फुटीकरोति—

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा॥ ४७॥

अन्वयः—सत्या अनृता च परुषा प्रियवादिनी च हिंस्रा दयालुः अपि अर्थपरा वदान्या नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च नृपनीतिः वाराङ्गना इव अनेकरूपा (अस्ति)।

व्याख्या—सत्या=यथार्थभाषिणी। अनृता=असत्यवादिनी च। परुषा=

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कठोरभाषिणी । प्रियवादिनी=मधुरालापिनी । तथा हिंस्राः=घातुकाः । दयालुः =कृपावती । अपि च=अन्यच्च । अर्थपरा=धनपरायणा । वदान्या=दान-शौण्डा च । नित्यव्यया—नित्यं=सर्वदा, व्ययः=कार्येषु विनियोगः, यस्याः सा नित्यव्यया । प्रचुरनित्यधनागमा—प्रचुरः=बहुः, नित्यं=सर्वदा, धनागमः=अर्थप्राप्तिः, यस्या यस्यां वा प्रचुरनित्यधनागमा च । नृपनीतिः—नृपस्य नीतिः नृपनीतिः=राजनीतिः । वाराङ्गना इव=वेश्या इव । अनेकरूपा—अनेकानि रूपाणि यस्याः सा अनेकरूपा=बहुप्रकारा, न त्वैकान्तिकी । अत्रापि वसन्ततिलकावृत्तमेव विज्ञेयम् ।

भावार्थः—यथा लोके वेश्या कदाचित् सत्यं कदाचिच्चासत्यं ब्रवीति, प्रसङ्गानुसारं क्वचित् कठोरं क्वचिच्च मधुरं वा वचनं ब्रूते, निर्दयतां दयालुतां लोभमौदार्यं चावलम्बते तथा यथासमयं धनवितरणमर्जनं वा कुरुते, तथैव नृपनीतिरप्यावश्यकतानुसारं सत्यमसत्यं च भावं प्रकटयन्ती अर्थार्जने कठिनतां मधुरतां वा व्यनक्ति, दण्डेन प्रजारक्षणेन च क्रूरतामौदार्यं च दर्शयन्ती धनव्ययं संग्रहं च कर्तुमुपदिशति ।

भाषार्थ—कभी सत्य और कभी असत्य, कभी कठोर, कभी मधुर बोलने वाली, कभी घातक, कभी दयालुयुक्त प्रवृत्ति वाली, कभी धनलोलुप, कभी उदार, कभी खर्च करने वाली, कभी अत्यधिक सञ्चय करने वाली राजनीति वेश्या स्त्री के समान अनेक रूपों को धारण करती है । अर्थात् इस पद्य में राजनीति की वेश्या से तुलना की गयी है । इसका मार्ग स्थायी नहीं होता, अवसर के अनुसार ये दोनों अपने-अपने व्यवहार को बदल देते हैं । अतः इन दोनों का विश्वास नहीं करना चाहिए ॥ ४७ ॥

अथ आज्ञादिषड्गुणोपेत एव नृपतिः समाश्रयणीयो न निर्गुण इति राजानमेव सम्बोध्याह—

आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥ ४८ ॥

अन्वयः—पार्थिव ! आज्ञा, कीर्तिः, ब्राह्मणानां पालनं, दानं, भोगः मित्रसंरक्षणं च एते षड्गुणाः येषां न प्रवृत्ताः, तेषाम् उपाश्रयेण कः अर्थः ?

व्याख्या—पार्थिव !—पृथिव्या ईश्वरः पार्थिव, तत्सम्बुद्धौ हे पार्थिव != हे राजन् ! आज्ञा=मर्यादापरिपालनात्मकं शासनम् । कीर्तिः=यशः । ब्राह्मणानां =विप्राणाम् । पालनं=सरक्षणम् । दानं=सत्पात्रेभ्यो धनादिकवितरणम् । भोगः=ऐश्वर्योपभोगः । मित्रसंरक्षणम्—मित्राणां संरक्षणं मित्रसंरक्षणम्=

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सुहृत्सम्पालनम् । च एते=पूर्वोक्ताः । षट्=रससंख्याका गुणाः । येषां=राज्ञां मध्ये । न प्रवृत्ताः=न प्रवर्तन्ते, नोपन्यस्ताः सन्ति । तेषां=तादृशानां च राज्ञाम् । उपाश्रयेण=सेवनेन । कोऽर्थः=को लाभः अस्ति ? न कोऽप्यर्थः । अत्रास्ति मालिनीवृत्तम् ।

भावार्थः–उत्तमशासनव्यवस्था, प्रसृतेन यशसा, ब्राह्मणकुलपालनेन, सत्पात्रेभ्यो धनत्यागेन, स्रक्चन्दनादिजनितसुखानुभवेन, सुहृत्समुद्धारेण च सुविरहितानां पार्थिवानां समाश्रयणेन न कोऽपि लाभो भवति । तस्मादुक्तषड्गुणसम्पन्न एव नृपतिः समाश्रयणीयो न तु कुक्षिम्भरिरिति भावः ।

भाषार्थ – आज्ञापालन करना, यश फैलाना, ब्राह्मणों का पालन करना, सत्पात्र को दान देना, ऐश्वर्य का उपभोग करना, मित्र का उद्धार करना, ये छह गुण जिसमें नहीं हैं, उस राजा के आश्रय में रहने से क्या प्रयोजन ?

अर्थात् – जिसने इन छह गुणों का सम्पादन नहीं किया है, उसकी राजसेवा निष्फल ही है । इसके विपरीत जिस राजा में भी ये समस्त गुण न हों, उस राजा का आश्रय लेने से भी कोई लाभ नहीं होता ॥ ४८ ॥

अथ मानवैः कार्पण्यं न कदापि विधेयं लाभालाभयोर्दैवाधीनत्वात्, सर्वो हि लोके सञ्चितकर्मानुसारमेव फलं लभते, नाधिकं न वा न्यूनमित्याशयेनाह—

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा सा कृथाः
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥ ४९ ॥

अन्वयः—धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महत् वा यत् धनं (अस्ति) तत् (मनुष्यः) मरुस्थले अपि नितरां प्राप्नोति, ततः अधिकं मेरौ (अपि) न (प्राप्नोति) । तत् (हे मनुष्य !) धीरः भव, वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः, पश्य ! घटः कूपे पयोनिधौ वा तुल्यं जलं गृह्णाति ।

व्याख्या—धात्रा=ब्रह्मणा । निजभालपट्टलिखितं—निजं=स्वीयं, यत् भालपट्टं, तस्मिन् लिखितमङ्कितमिति निजभालपट्टलिखितम्=स्वललाटाङ्कितम् । स्तोकं=अल्पम् । महत्=बहु अधिकं वा । यद् धनं=वित्तम् अस्ति । तत्=तदेव मनुष्यः । मरुस्थले=निर्जले ऊषरदेशेऽपि । नितरां=निश्चितम् । प्राप्नोति=अवश्यं लभते । ततः=ब्रह्मालिखितादधिकम्, अतिशयितम् । मेरौ=कनकाचले अपि न प्राप्नोति । तत्=तस्मात् कारणात् निश्चयेन (हे मनुष्य !) । धीरः=गम्भीरः । भव=जायस्व । वित्तवत्सु—वित्तमस्ति येषु ते वित्तवन्तः, तेषु

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वित्तवत्सु=धनिकेषु । कृपणां=दीनाम् । वृत्तिं=व्यापारम् । वृथा=व्यर्थम् । मा कृथाः=न कुरु । पश्य=अवलोकय । घटः=कलशः । कूपे=प्रह्रौ । पयोनिधौ—पयांसि निधीयन्तेऽस्मिन्निति पयोनिधिः, तस्मिन् पयोनिधौ=जलनिधौ वा । तुल्यं=समानम् । जलं=सलिलं । गृह्णाति=आदत्ते । अत्र हि शार्दूलविक्रीडितनामकं छन्दः ।

भावार्थः—यथा कलशेन कूपे समुद्रे वा समानमेव पानीयं गृह्यते, तथैव सर्वोऽपि प्राणी स्वभाग्यानुसारमेव सर्वत्र सर्वदा सर्वासु अवस्थास्वपि धनं समाप्नोति नाधिकं न वा न्यूनम् । अतः एतद्दृष्टान्तेन पुंसा समाहितचित्तेन भवितव्यं न तु कार्पण्यपर्याकुलेनेति तात्पर्यम् । तस्मात् मदान्धानां धनिकानां पुरतो व्यर्थं दैन्यं न प्रदर्शनीयम् ।

भाषार्थ—विधाता ने जिस मनुष्य के ललाट-फलक पर (भाग्य में) थोड़ा या अधिक धन लिख दिया है, वह उसे मरुस्थल में भी सर्वथा प्राप्त कर लेता है और उससे अधिक स्वर्णमय सुमेरु पर्वत पर भी उसे नहीं मिल सकता है ।

इसलिए हे मनुष्य ! धैर्यशाली बनो तथा धनवानों के आगे व्यर्थ अपनी हीन वृत्ति मत दिखाओ । देखो, घड़ा कूएँ में और समुद्र में भी बराबर पानी ग्रहण करता है, अतः अपने भाग्य के अनुसार ही मनुष्य को सब कुछ मिलता है ॥ ४९ ॥

उदारो हि दाता याचकानां दीनां हीनां वाऽभ्यर्थनां विना तेभ्यो ददातीति मेघदृष्टान्तेनाह—

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः ।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्योक्ति प्रतीक्षसे ॥ ५० ॥

अन्वयः—हे अम्भोदवर ! त्वम् एव चातकाधारः असि इति केषां गोचरः न असि, तत् अस्माकं कार्पण्योक्तिं किं प्रतीक्षसे ?

व्याख्या—अम्भोदवर !—अम्भः=सलिलं, ददति=वर्षन्ति इति अम्भोदः, तेषु वरः=श्रेष्ठः, इति अम्भोदवरः, तत्सम्बुद्धौ हे अम्भोदवर !=हे मेघ ! त्वम् एव=केवलम् । चातकाधारः—चातकानां=चक्रवाकानां पक्षिणामाधारः=आश्रयः । असि=वर्तसे (इति हेतोः) । केषां=पुरुषाणाम् । गोचरः=ज्ञानं न असि । तत्=तस्मात् । अस्माकं=नः । कार्पण्योक्तिम्—कृपणस्य भावः कार्पण्यं, कार्पण्यस्योक्तिः कार्पण्योक्तिः, तां कार्पण्योक्तिम्=दीनतामयं वचनम् । किम्=किमर्थम् । प्रतीक्षसे=श्रोतुमिच्छसि ? अत्रानुष्टुप्वृत्तं वर्त्तते ।

भावार्थः—अरे जलधर ! अस्माकं केवलं त्वमेवासि आधारः । त्वामन्तरा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नो जीवनमतिदुःसहमस्ति । तर्हि अलमस्माकं दीनहीनवचनश्रवणेन । त्वया कृपया अस्माकमभीष्टं शीघ्रतरं पूरणीयम् ।

भावार्थ—हे मेघश्रेष्ठ ! तुम ही हम चातकों के आधार हो; यह किसको नहीं मालूम है ? तो फिर हमारे दीन-हीन वचनों की क्यों प्रतीक्षा कर रहे हो ? तात्पर्य यह है कि महान् व्यक्ति को अपने आश्रितजन की प्रार्थना की प्रतीक्षा करना अनुचित है । दानी को तो बिना याचक के माँगे ही अभीष्ट प्रदान करना चाहिए, क्योंकि उसी में उसकी महत्ता है ॥ ५० ॥

अथार्थिभिः सर्वत्र निजमनोरथो न प्रकाशनीय इति चातकान्योक्त्या प्रदर्शयति—

रे रे चातक ! सावधानमनसा मित्र ! क्षणं श्रूयता-
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—रे रे मित्र चातक ! (त्वया) सावधानमनसा क्षणं श्रूयताम्, गगने बहवः हि अम्भोदाः वसन्ति । सर्वेऽपि एतादृशाः न (सन्ति) । केचिद् वृष्टिभिः वसुधाम् आर्द्रयन्ति, केचित् वृथा गर्जन्ति, (त्वम्) यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतः दीनं वचः मा ब्रूहि ।

व्याख्या—रे रे मित्र चातक !=अयि सखे सारङ्गपक्षिन् ! त्वया=भवता । सावधानमनसा=अवहितेन चेतसा । क्षणम्=अल्पकालम् । श्रूयताम्= मद्वचनम् आकर्ण्यताम् । गगने=आकाशे । बहवः=असंख्याकाः । अम्भोदाः—अम्भांसि ददतीति अम्भोदाः=मेघाः । वसन्ति=वासं कुर्वन्ति, तिष्ठन्ति । सर्वे=सकला अपि ते । एतादृशः=ईदृशाः, करुणाकरा न सन्ति । केचित्=केचन मेघाः । वृष्टिभिः=वर्षणैः । वसुधां=पृथ्वीम् । आर्द्रयन्ति=आर्द्रं कुर्वन्ति । केचित्= अपरे मेघाः । वृथा=व्यर्थम्, निरर्थकम् । गर्जन्ति=महान्तं घोषं कुर्वन्ति । त्वम् =भवान् । यं यम्=यं कञ्चन मेघम् । पश्यसि=अवलोकयसि । तस्य तस्य= सर्वस्य । पुरतः=अग्रे । दीनं=दीनदशाप्रदर्शकम् । वचः=वचनम् । मा ब्रूहि= न कथय । अत्र विद्यत शार्दूलविक्रीडितं नामकं छन्दः ।

भावार्थः—चातकान्योक्त्या याचकं सावधानयन् कश्चन कथयति—अरे मित्र चातक ! व्योम्नि सत्सु बहुषु मेघेषु केचन केवलं गर्जन्त्येव न वर्षन्ति, कतिपये च वर्षन्त्येव न गर्जन्ति । अतो जलाभिलाषया न सर्वे मेघा अभ्यर्थनीयाः । एवं जगति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्विधा मनुष्याः सन्ति, केचन केवलं ब्रुवते एव, न काकणिकामपि प्रयच्छन्ति। केचिच्च किञ्चिदब्रुवन्तोऽपि प्रचुरं प्रयच्छन्ति। अतः सामान्यतया न सर्वेऽभ्यर्थनीयाः, अपितु सम्यग् विचार्यैव स्वाभिप्रायः प्रकाशनीयः।

भावार्थ—अरे मित्र पपीहे! सावधान मन से क्षणभर मेरी बात सुनो, आकाश में बहुत से बादल हैं, पर सभी एक समान नहीं हैं। उनमें कुछ तो वर्षा से पृथ्वी को भिगो देते हैं और कुछ व्यर्थ ही गरजते रहते हैं। अतः जिस-जिस मेघ को तू देखता है, उस-उस के सामने अपना दीनतापूर्ण वचन मत बोलो। अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि जिस-किसी के सामने बिना विचारे अपनी दीनता न प्रकट करे। जो गरजते हैं, वे बरसते नहीं—इस कथन के अनुसार कुछ लोग व्यर्थ की ही बातें करते हैं, किसी की सहायता नहीं करते। अतः सबके सामने गिड़गिड़ाना अपना उपहास करवाना है॥ ५१॥

अथार्थादिसम्पन्नोऽपि दुर्जनोऽनुपादेय एवेति निरूपणानन्तरं दुर्जनानामवगुणं गणयन् तेषां नैसर्गिकं लक्षणं निरूपयति—

अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्॥ ५२॥

अन्वयः—अकरुणत्वम् अकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा सुजनबन्धुजनेषु असहिष्णुता हि इदं दुरात्मनां प्रकृतिसिद्धम् (अस्ति)।

व्याख्या—अकरुणत्वम्—करुणाया भावः करुणत्वं, न करुणत्वमकरुणत्वम्= दयाहीनत्वम्। अकारणविग्रहः—न कारणमकारणम्, अकारणं यथा स्यात्तथा विग्रह अकारणविग्रहः=निष्कारणकलहः, व्यर्थं युद्धम्। परधने—परेषां धनं परधनं, तत्र परधने=परकीये वित्ते। परयोषिति—परस्य योषित् परयोषित्, तस्यां परयोषिति=अन्यकलत्रे च। स्पृहा=अभिलाषः, प्रवृत्तिर्वा। एकत्रापहरणेच्छा, अन्यत्र सम्भोगाभिलाषश्च। सुजनबन्धुजनेषु—सुजनाश्च बन्धुजनाश्चेति सुजनबन्धुजनाः, तेषु सुजनबन्धुजनेषु=सज्जनपरिवारवर्गेषु। असहिष्णुता—सहिष्णोर्भावः सहिष्णुता, न सहिष्णुता असहिष्णुता=असहनशीलता ईर्ष्या वा। हि=निश्चयेन। इदम्=एतल्लक्षणम्। दुरात्मनां=दुष्टचित्तानां खलानाम्। प्रकृतिसिद्धम्—प्रकृत्या=स्वभावेन, सिद्धं=निष्पन्नमिति प्रकृतिसिद्धम्=स्वभावसिद्धम्। अस्ति। अतस्ते नोपादेयाः। अस्मिन् श्लोके तु द्रुतविलम्बितनामकं छन्दोऽस्ति।

भावार्थः—दुर्जना हि कारणमन्तरा स्वभावात् एव निष्ठुरा भवन्ति, व्यर्थमेव कलहं कुर्वन्ति, परधनमपहर्तुं परस्त्रियं चोपभोक्तुं निरन्तरं कामयन्ते।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सज्जनपुरुषाणात्मीयबन्धूनां चोत्कर्षं न कदापि सहन्ते, अपितु ईर्ष्यां कुर्वन्ति। एष हि दुर्जनानां स्वभावः दुस्त्यजः। अतस्ते परिहेया एव।

भाषार्थ—निर्दयता, बिना कारण झगड़ना, दूसरे का धन पाने की इच्छा करना एवं परस्त्री का उपभोग करने की कामना करना, सज्जनों एवं बन्धुओं के प्रति असहनशीलता (ईर्ष्या) करना, ये सभी दुरात्माओं के स्वभावसिद्ध लक्षण हैं। किसी के स्वभावसिद्ध विचारों को कोई बदल नहीं सकता तथा उनसे कभी किसी को लाभ भी नहीं पहुँच सकता॥ ५२॥

ननु आस्ता तावद् दुर्जनमात्रस्य परित्याज्यनिश्चयविमर्शः, यतो हि अशेषावगुणमार्जकविद्यासम्पन्नोऽपि दुर्जनपुरुषः सर्वथा परिहरणीय एवेति सोदाहरणं ब्रूते—

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥ ५३॥

अन्वयः—दुर्जनः विद्यया अलङ्कृतः सन् अपि (लोकैः) परिहर्तव्यः। मणिना भूषितः (अपि) असौ सर्पः भयङ्करः न किम्?

व्याख्या—दुर्जनः—दुष्टो जनो दुर्जनः=खलः। विद्यया=शास्त्रज्ञानेन। अलङ्कृतः=विभूषितः। सन्नपि=सकलविद्यापारीणो भवन्नपि। लोकैः परिहर्तव्यः—परिहर्तुं योग्यः परिहर्तव्यः=त्याज्यः, तत्संसर्गो न विधेयः। मणिना=शिरस्थेन रत्नेन। भूषितः=अलङ्कृतः सन्नपि। असौ सर्पः=भुजगः। भयङ्करः—भयं करोतीति भयङ्करः=भयप्रदः। न किं=नास्ति किम्? अपितु अस्त्येव। अत्रानुष्टुप्छन्दो वर्तते।

भावार्थः—वेदाङ्गाद्यात्मिकया सकलविद्ययाऽलङ्कृतत्वेनातिसुन्दरोऽपि दुर्जनो विद्यालोभात् फणाफलकस्थितेन माणिक्येन सुशोभितः सर्प इव माणिक्यलोभात् न कदापि श्रद्धेयो न वोपसर्पणीयः यतो ह्युभयोः भयङ्करयोः सम्पर्को हानिकर एव भवति। अतो मणिविभूषितसर्पप्रायो विद्वानपि दुर्जनो दूरतस्त्याज्य एवेति भावः।

भाषार्थ—विद्या से विभूषित होने पर भी दुष्ट मनुष्य का साथ छोड़ देना चाहिए। अपने फण पर से वर्तमान मणि से सुशोभित सर्प क्या भयङ्कर नहीं होता?

तात्पर्य यह है कि विद्वान् होने पर भी दुर्जन मनुष्य सर्वथा त्याज्य है। मनुष्य को उनसे संसर्ग नहीं रखना चाहिए, क्योंकि विद्यासम्पादन कर लेने पर भी उसकी स्वाभाविक दुष्टता कदापि नष्ट नहीं होती, जैसे फण में मणि लगे रहने पर भी विषधर साँप अपनी भयङ्करता को नहीं छोड़ता और समय आने पर प्राणियों को अवश्य काट लेता है॥ ५३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ दुर्जनस्य सर्वदूषकत्वं स्पष्टयति—

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे
तत्को नाम गुणो भवेत् स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ॥ ५४ ॥

अन्वयः—ह्रीमति जाड्यम्, व्रतरुचौ दम्भः, शुचौ कैतवम्, शूरे निर्घृणता, मुनौ विमतिता, प्रियालापिनि दैन्यम्, तेजस्विनि अवलिप्तता, वक्तरि मुखरता, स्थिरे अशक्तिः गण्यते। तत् गुणिनां सः कः नाम गुणः भवेत्, यः दुर्जनैः न अङ्कितः?

व्याख्या—ह्रीमति—ह्रीरस्त्यस्मिन्निति ह्रीमान्, तस्मिन् ह्रीमति=लज्जाशीले पुंसि। जाड्यम्—जडस्य भावः जाड्यम् =मन्दता, अकिञ्चित्करत्वम्। व्रतरुचौ—व्रते=दुष्करचान्द्रायणादिव्रतानुष्ठाने, रुचिः=प्रवृत्तिर्यस्य स व्रतरुचिः, तस्मिन् व्रतरुचौ=व्रतशुद्धे। दम्भः=धर्मध्वजित्वम्, आडम्बरम्। शुचौ=स्वभावाद् बाह्याभ्यन्तरे शुद्धे। कैतवं=कपटम्। शूरे=शौर्यशालिनि। निर्घृणता=दयाशून्यत्वम्। मुनौ=मननशीले। विमतिता—विगता=नष्टा, मतिः यस्य स विमतिः, तस्य भावः विमतिता=बुद्धिहीनता। प्रियालापिनि—प्रियमालपितुं शीलं यस्य स प्रियालापी, तस्मिन् प्रियालापिनि=मधुरभाषिणि। दैन्यं=दीनता। तेजस्विनि—तेजोऽस्यास्तीति तेजस्वी, तस्मिन् तेजस्विनि=परप्रयुक्तावमानाद्यसहनशीले। अवलिप्तता—अवलिप्तस्य भावः अवलिप्तता=अभिमानित्वम्। वक्तरि=भाषणशक्तिसम्पन्ने। मुखरता=असम्बद्धप्रलापित्वम्। स्थिरे=निश्चले। अशक्तिः—न शक्तिः अशक्तिः=असमर्थता च। गण्यते=सम्भाव्यते। तत्=तस्मात् कारणात्। गुणिनां=गुणसम्पन्नानाम्। सः कः नाम=किन्नामधेयो। गुणः भवेत्=स्यात्। यः दुर्जनैः=दुष्टैः पुरुषैः। नाङ्कितः=न कलङ्कितः, न वा दूषितः। अपितु सर्व एव दूषितो भवतीत्यर्थः। अत्र शार्दूलविक्रीडितनामकं वृत्तमस्ति।

भावार्थः—दुष्टानां पुरुषाणामेष एव स्वभावो वर्तते यत्ते लज्जाशीलत्वादि गुणवत्सु महानुभावेषु पुरुषविशिष्टेषु मन्दत्वादिकं दोषमारोपयन्त्येव, यतो हि वस्तुतत्त्वानभिज्ञा ते महतां गुणानपि दोषदृष्ट्यैव पश्यन्ति, न ते गुणग्रहणाय प्रयतन्ते इति भावः।

भाषार्थ—दुर्जन लोग लज्जाशील व्यक्ति में जडता, व्रत में रुचि रखने वाले पुरुष में पाखण्डता, पवित्र चरित्र वालों में कपटीपन, पराक्रमी पुरुषों में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निर्दयता, मुनि या मौनी में मतिहीनता, मधुरभाषी में दीनता, तेजस्वी पुरुषों में अहन्ता, वक्ता में बकवादीपन तथा गम्भीर पुरुषों में असमर्थता आदि दोषों का होना कहा करते हैं। ऐसी परिस्थिति में फिर गुणवानों का वह कौन-सा ऐसा गुण है, जिसे दुर्जनों ने कलंकित नहीं किया हो। अर्थात् दुष्ट व्यक्ति सत्पुरुषों के गुणों में कोई न कोई दोष अवश्य ही निकालते रहते हैं। गुणों में दोषारोपण करना मानों उनका कर्तव्य है ॥ ५४ ॥

अथ ग्राह्याग्राह्यविवेकार्थं गुणागुणप्रणालिकामाह—

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ?
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ? ॥५५॥

अन्वयः—लोभः चेत् (अस्ति तर्हि) अगुणेन किम् ? यदि पिशुनता अस्ति (तर्हि) पातकैः किम् ? सत्यं चेत् (अस्ति तर्हि) तपसा किम् ? यदि शुचि मनः अस्ति (तर्हि) तीर्थेन किम् ? यदि सौजन्यं (तर्हि) गुणैः किम् ? यदि सुमहिमा अस्ति (तर्हि) मण्डनैः किम् ? यदि सद्विद्या (तर्हि) धनैः किम् ? यदि अपयशः अस्ति (तर्हि) मृत्युना किम् ?

व्याख्या—लोभः=धनगार्द्धयम्। चेत्=यदि अस्ति। तर्हि अगुणेन=गुणाभावेन। दुर्गुणेन किम्=न किञ्चिदपीत्यर्थः, लोभस्यैव सकलदोषास्पदत्वात्। यदि=चेत्। पिशुनता=परोक्षे परदोषसूचकता। अस्ति=विद्यते। तर्हि पातकैः=ब्रह्महत्यादिभिः पापैः किम् ? दौर्जन्यस्यैव पापमूलकत्वात्, पिशुनताया वा कुम्भीपाकादिनिरयनिपातहेतुत्वात्। सत्यं=ऋतं यथार्थभाषणम्। चेत्=यदि अस्ति। तर्हि तपसा=कृच्छ्रचान्द्रायणादिना किम् ? तस्यैव सकलकल्मषापहन्तृत्वात्। यदि=चेत्। शुचि मनः=शुद्धं पवित्रं मानसमस्ति। तर्हि तीर्थेन किम्=काश्यादितीर्थयात्रादिना किम् ? निर्मलेन मनसा सर्वतीर्थयात्राजन्यफलनिष्पत्तेः। शुद्धचित्तस्य एवापवर्गसाधकत्वात्। यदि=चेत्। सौजन्यं–सुजनस्य भावः सौजन्यं=सज्जनता अस्ति। तर्हि गुणैः=दयादाक्षिण्यादिभिः किम् ? तेनैव सर्वेषु निजत्वबुद्धिसंस्थापनात्। यदि सुमहिमा=सुन्दरं महत्त्वम् अस्ति। तर्हि मण्डनैः=हारकुण्डलाद्यलङ्कारैः किम् ? तस्यैव सकलप्रसाधनहेतुत्वात्। यदि सद्विद्या—सती विद्या सद्विद्या=अनवद्या श्रेष्ठा विद्या वा अस्ति। तर्हि धनैः किम् ? तस्या एव सकलभोगसम्पादकत्वात् धनोपार्जनसम्भवाच्च। यदि अपयशः=अपकीर्तिः, अस्ति चेत्। तर्हि मृत्युना=मरणेन किम् ? तद्वत एव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवन्मृतत्वात् अयशसैव मरणादिकष्टकारित्वात्। अत्रापि शार्दूलविक्रीडित-नामकमेवास्ति छन्दः।

भावार्थः—लोभादिकस्य तत्तत्कार्यकारित्वेन गुणाभावादिरूपत्वं विचार्य सुधीभिः सद्गुणोपार्जनतत्परैर्भाव्यं न तु दौर्जन्यसम्पादकावगुणप्रवणैरिति तात्पर्यम्।

भाषार्थ—यदि मनुष्य में लोभ है तो और किसी दुर्गुणों से क्या प्रयोजन? यदि चुगुलखोरी है तो पापों से क्या मतलब? यदि सत्य है तो तप से क्या कार्य? यदि मन पवित्र है तो तीर्थयात्रा करने से क्या लाभ? यदि सुजनता है तो गुणों से क्या जरूरत? यदि सुयश है तो अलङ्कार धारण करने की क्या आवश्यकता? यदि उत्तम विद्या है तो धन से क्या लेना-देना? यदि अपयश है तो मृत्यु से क्या प्रयोजन? अतः मनुष्य को लोभ आदि अवगुणों का परित्याग तथा सत्यता आदि सद्गुणों का ग्रहण करना चाहिए॥ ५५॥

अथ कस्यचिदनुभविनो जिनकष्टाभिवेदकानि सप्तशल्यानि प्रदर्शयति—

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः।
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो
नृपाङ्गणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे॥ ५६॥

अन्वयः—दिवसधूसरः शशी, गलितयौवना कामिनी, विगतवारिजं सरः, स्वाकृतेः अनक्षरं मुखम्, धनपरायणः प्रभुः, सततदुर्गतः सज्जनः, नृपाङ्गणगतः खलः, (एतानि) सप्त मे मनसि शल्यानि (सन्ति)।

व्याख्या—दिवसधूसरः—दिवसे=दिने, धूसरः=मलिनः, इति दिवसधूसरः=दिवाक्षीणकान्तिः, निस्तेजस्कः। शशी—शशोऽस्यास्तीति शशी=चन्द्रमा। गलितयौवना—गलितं यौवनं यस्याः सा गलितयौवना=नष्टतारुण्या। कामिनी=कान्ता। विगतवारिजं—विगतानि वारिजानि यस्मिन् तत् विगतवारिजम्=कमलहीनम्। सरः=कासारः। स्वाकृतेः—सुष्ठु=शोभना, आकृतिर्यस्य स स्वाकृतिः, तस्य स्वाकृतेः=मनोहराकारस्य पुरुषस्य। अनक्षरं—न अक्षराणि यस्मिन् तदनक्षरम्=अक्षरशून्यं, विद्याविहीनं वा। मुखम्=आननम्। धनपरायणः—धने परायणो धनपरायणः=वित्तलुब्धः। प्रभुः=राजा, स्वामी। नृपाङ्गणगतः—नृपस्याङ्गणं नृपाङ्गणं, तत्र गतः नृपाङ्गणगतः=राजगृहान्तर्वर्ती, राजसभोपस्थितो वा। खलः=दुर्जनः। इत्येतानि सप्त=सप्तसङ्ख्याकानि। मे=मम। मनसि=हृदये। शल्यानि=शूलानि सन्ति। अत्र पृथ्वीनामकं छन्दो वर्तते।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—विश्वस्मिन् सप्तवस्तूनि अनुभविनो मानवस्य कष्टकराणि जायन्ते। तथाहि दिवा आह्लादरहितश्चन्द्रमा, तारुण्यहीना वनिता, सरसिजविहीनः सरोवरः, मनोरमावयवस्य पुंसो विद्याविहीनं वदनम्, वित्तार्जननिरतो नृपतिः, शाश्वतदुःखी सज्जनः पुरुषः, राजाजिरविहारी दुर्जनश्च—इत्येवात्यन्तिककष्टनिवेदनमिति तात्पर्यम्।

भाषार्थ—दिन के समय धूमिल पड़ा चन्द्रमा, यौवन-ढली स्त्री, कमलविहीन सरोवर, सुन्दर आकृति वाले मनुष्य का निरक्षर मुख, धन का लोभी स्वामी, निरन्तर दुर्दशाग्रस्त सज्जन तथा राजा के दरबार में पहुँचा हुआ दुर्जन—ये सात मेरे मन में काँटे—कील की तरह चुभते हैं। वस्तुतः चन्द्रमा, सुन्दर नारी, सरोवर, रूपवान् पुरुष, सज्जन स्वामी तथा राजा—ये अधिक शोभा के विषय हैं. किन्तु जब ये अवगुणों से संयुक्त हो जाते हैं, तब ये ही मन में खटकने वाले हो जाते हैं॥ ५६॥

अथ दुष्टराजलक्षणं सदृष्टान्तमाह—

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम्।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः॥ ५७॥

अन्वयः—चण्डकोपानां भूभुजां कश्चित् अपि न आत्मीयः नाम। (पावकः) स्पृष्टः (सन्) जुह्वानं होतारमपि दहति।

व्याख्या—चण्डकोपानाम्—चण्डाः कोपा येषां ते चण्डकोपाः, तेषां चण्डकोपानाम्=उग्रक्रोधानाम्। भूभुजां—भुवं भुञ्जन्ति ये ते भूभुजः, तेषां भूभुजां=पृथ्वीपालानाम्। कश्चिदपि=कोऽपि पुरुषः। आत्मीयो नाम=स्वीयत्वेन प्रसिद्धिः। नास्ति=न विद्यते। पावकः=अनलः। स्पृष्टः=करस्पर्शविषयतां प्राप्तः सन्। जुह्वानं=हवनं कुर्वन्तम्। होतारं=होतृनामधेयमृत्विग्विशेषम्। दहति=सन्तापयति। अस्मिन् पद्येऽनुष्टुप्छन्दो वर्तते।

भावार्थः—यथा वह्निः होमेनात्मानं तर्पयन्तमपि होतारमृत्विजं दहत्येव तथैवोग्रप्रकृतीनां नृपतीनां कश्चिन्नपि पुरुष आत्मीयोऽन्यो वा न भवति, किन्तु कार्यानुसारमवसरे कोऽपि आत्मीयः परो वा भवति। अतोऽग्निदृष्टान्तेनेदृशो राजा नाश्रयणीय इति भावः।

भाषार्थ—अत्यन्त क्रोधी राजाओं का कोई भी व्यक्ति अपना नहीं होता। हवन करते हुए होता को भी अग्नि छू जाने पर जला ही देती है। अर्थात् क्रोध करने से सर्वत्र हानि होती है। इसीलिए तो क्रोधी राजाओं का अपना कोई भी आत्मीय नहीं होता। उससे सब डरते ही रहते हैं। अग्नि को देखो, असावधानता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से हवन करने वाले का भी आहुति देते समय हाथ जला ही देती है। अतः अधिक क्रोधवान् व्यक्तियों से सबको सावधान रहना चाहिए ॥ ५७ ॥

अथेदानीं सेवाया अतिदुष्करत्वमाह—

मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा
धृष्टः पार्श्वे वसति च सदा दूरतश्चाऽप्रगल्भः ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—(पुरुषः) मौनात् मूकः प्रवचनपटुः वातुलः जल्पकः वा (यदि) सदा पार्श्वे वसति, (तर्हि) धृष्टः (यदि च) दूरतः (वसति, तर्हि) अप्रगल्भः च, क्षान्त्या भीरुः यदि न सहते (तर्हि) प्रायशः नाभिजातः (कथ्यते), अतः परमगहनः सेवाधर्मः, योगिनामपि अगम्यो भवति ।

व्याख्या—मौनात् = तूष्णीम्भावात् । मूकः = निर्वचः । प्रवचनपटुः—प्रवचने पटुः प्रवचनपटुः = भाषणशक्तिनिपुणः । वातुलः = वातरोगग्रस्तः, उन्मत्तप्रलापी । जल्पकः = वाचालो वा । यदि सदा = सर्वदा । पार्श्वे = पार्श्वभागे, समीपे । वसति = तिष्ठति । तर्हि धृष्टः = अविनीतः, निर्लज्जः । यदि च दूरतः = दूरे वसति । तर्हि अप्रगल्भः = अप्रौढः, प्रतिभाहीनः । क्षान्त्या = क्षमया । भीरुः = भयान्वितः । यदि = चेत् । न सहते = न मर्षयति । तर्हि प्रायशः = बहुधा । नाभिजातः = न सत्कुलप्रसूतः कथ्यते । अतः परमगहनः—परमो गहनः परमगहनः = अतिगूढः । सेवाधर्मः = परिचर्यारूपं कर्म । योगिनामपि = अतीन्द्रियार्थदर्शिनां त्रैकालिकज्ञानशालिनां महात्मनामपि । अगम्यः—गन्तुं योग्यः गम्यः, न गम्योऽगम्यः = अज्ञेयः अस्ति । अस्मिन् पद्ये तु मन्दाक्रान्तानामकं वृत्तं वर्तते ।

भावार्थः—सेवाधर्मो हि अतिदुष्करो वर्तते, यतो हि कस्यापि पुंसो मनस्तोषाय सेवैव भवति, किन्तु यथार्थतया सेवां कर्तुं न कश्चित् प्रभवति । कस्यापि गुणवर्णनमकुर्वाणो मानवो मूक इति निगद्यते । विशेषतो वर्णयन् उन्मत्तः प्रलापी प्रोच्यते, सर्वदा समीपे निवसन् निर्लज्जः कथ्यते, दूरे वसन् अप्रौढ इति निगद्यते । सहनशीलः भयान्वितः प्रोच्यते, सहनशीलताहीनः क्रोधनोऽकुलीनश्च मन्यते । तस्मात् सेवाधर्मस्य परमगहनत्वात् साधूक्तं 'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः' इति । सेवाधर्मः परिचर्यात्मकं कर्म कालक्रियाभिज्ञानम् अतीन्द्रियवस्तुपरिज्ञानवतां योगिनामपि अत्यन्तदुरवगाहः तर्हि किमुतान्येषामिति भावः ।

भाषार्थ—सेवक मौन रहने पर गूँगा, बोलने में चतुर होने से बातूनी,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पास में रहने पर ढीठ, दूर रहने पर अव्यवहारी, क्षमाशील होने पर डरपोक, असहनशील होने पर अकुलीन कहा जाता है। इस तरह सेवा का कार्य गहन है, जहाँ योगी भी नहीं पहुँच सकते हैं। अर्थात् सेवाधर्म अत्यन्त कठिन है, जिसका बड़े-बड़े योगिराज भी पार नहीं पा सकते हैं। सेवावृत्ति में तो व्यक्ति का स्वाभिमानपूर्वक जीना सर्वथा असम्भव है ॥ ५८ ॥

अथेदानीं नीचपुरुषस्य दर्शनमपि सुखप्राप्तेः प्रतिबन्धकं भवतीत्याह—

उद्भासिताऽखिलखलस्य विश्रृङ्खलस्य
प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः ।
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य
नीचस्य गोचरगतैः सुखमाप्यते कैः ? ॥ ५९ ॥

अन्वयः—उद्भासिताखिलखलस्य विश्रृङ्खलस्य प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः दैवात् अवाप्तविभवस्य गुणद्विषः अस्य नीचस्य गोचरगतैः कैः सुखम् आप्यते ?

व्याख्या—उद्भासिताः=प्रकाशिताः, अखिलाः=सर्वे, खलाः=दुर्जनाः, येन स उद्भासिताखिलखलः, तस्य उद्भासिताखिलखलस्य=अधिकारप्रदानेन पुरस्कृताशेषदुर्जनस्य। विश्रृङ्खलस्य=प्रतिबन्धरहितस्य, स्वच्छन्दगतेः। प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः—प्राग्जातानि=पूर्वस्मिन् समये निष्पन्नानि, विस्तृतानि=समयेऽस्मिन् सर्वतः प्रसारितानि, निजानि=स्वीयानि, यानि अधमकर्माणि=दुराचरणानि, तेषु वृत्तिः=प्रवृत्तिर्यस्य स तस्य प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः। दैवात्=अदृष्टवशात्। अवाप्तविभवस्य—अवाप्तः=प्राप्तः, विभवमैश्वर्यं यस्य स तस्य अवाप्तविभवस्य=प्राप्तैश्वर्यस्य। गुणद्विषः—गुणान्=दयादाक्षिण्यादीन्, द्वेष्टीति गुणद्विट्, तस्य गुणद्विषः। अस्य=उक्तगुणविशिष्टस्य। नीचस्य=अधमस्य, दुराचारिणः। गोचरगतैः—गोचरं=विषयं, गताः=प्राप्ताः, गोचरगताः, तैः गोचरगतैः=विषयवासिभिः। कैः=कैः पुरुषैः। सुखम्=आनन्दम्। आप्यते=प्राप्यते ? न कैरपीत्यर्थः। अस्मिन् श्लोके तु वसन्ततिलकानामकं छन्दो विद्यते।

भावार्थः—दुर्जनाग्रगण्यः स्वेच्छाचारी कुतोऽपि प्राप्तविभवः नैसर्गिकतया भयङ्करो भवति। तदीयं दौर्जन्यं नूनमवर्णनीयं भवति। स सद्गुणान् द्विषन् दर्शनमात्रेण सर्वेषां क्लेशकारको जायते। अतो न तादृशस्य नीचस्य समाश्रयः कर्तव्य इति भावः।

भाषार्थ—अपने वर्ग में समस्त दुष्टों को प्रोत्साहन देकर चमकने वाले, इच्छानुसार आचरण करने वाले, पहले की गयी अपनी धर्म-वृत्ति को एकदम

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भूला देनेवाले, दैवयोग से सम्पत्ति-प्राप्त गुणद्वेषी नीच व्यक्ति के सामने आने पर किसने सुख पाया ? अर्थात् किसी ने नहीं पाया। नीच व्यक्ति की संगति तथा सेवा कदापि सुखदायक नहीं होती, क्योंकि वह अवगुणों की खान है। दुर्जनों की संगति तो दूर रही, उनके दृष्टिपात से ही सर्वत्र अमङ्गल हो जाता है। अतः दुर्जनों से सदा दूर रहना चाहिए ॥ ५९ ॥

अथ दुर्जन-सुजनयोर्मैत्रीप्रकारं प्रदर्शयति—

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥ ६० ॥

अन्वयः—खलसज्जनानां मैत्री आरम्भगुर्वी क्रमेण क्षयिणी, पुरा लघ्वी पश्चात् च वृद्धिमती, अतः पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना दिनस्य छाया इव (भवति)।

व्याख्या—खलसज्जनानां—खलाः=दुष्टपुरुषाः, सज्जनाः=शिष्टपुरुषाः, खलाश्च सज्जनाश्चेति खलसज्जनाः, तेषां खलसज्जनानां=दुर्जनसुजनानाम्। मैत्री=मित्रता। आरम्भगुर्वी—आरम्भे=आदौ, गुर्वी=महती वर्द्धमाना, इति आरम्भगुर्वी। क्रमेण=कालक्रमानुसारम्। क्षयिणी=क्षीयमाणा। पुरा=प्रथमम्। लघ्वी=स्वल्पस्वरूपा। पश्चात्=अनन्तरम्। च वृद्धिमती=वृद्धिं गच्छन्ती। अतः=अतः हेतोः। पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना—पूर्वार्द्धं परार्द्धं च पूर्वपरार्द्धे, ताभ्यां भिन्ना पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना—पूर्वार्द्धे=प्रथमार्द्धे—प्रातःकालाद् द्वादशवादनपर्यन्तम्, परार्द्धे=उत्तरार्द्धे च—द्वादशवादनानन्तरं सायंकालं यावत्, भिन्ना=पृथग्रूपा। दिनस्य=दिवसस्य। छाया इव=भिन्नरूपा यथा भवति। उपजातिवृत्तमेतत् ज्ञेयम्।

भावार्थः—दुर्जनानां सज्जनानां च मैत्री दिनस्य पूर्वाह्णापराह्णभेदेन भिन्ना भवति। दुर्जनमैत्री पूर्वाह्णछायेव आरम्भसमये महती क्रमेण लघ्वी च जायते। सुजनमैत्री तावत् अपराह्णछायेवादौ लघ्वी ततो वर्द्धिष्णुर्भवति। अर्थात् यथा दिनादौ सूर्यच्छाया पूर्वं वर्द्धमाना ततः क्षीयमाणा दृश्यते. तथैव खलानां स्नेहः पूर्वं बृहद्रूपतां पश्चाच्च स्वल्परूपतां भजते। एवं च खलाः स्वं कार्यं साधयितुमादौ कृत्रिमं स्नेहं प्रदर्शयन्ति कार्ये च सिद्धे स्नेहाद्विरमन्ति। सज्जनाः पुनः साधारणरूपेण प्रेम प्रदर्शयन्ति पश्चाच्च विशेषरूपेण प्रेम प्रदर्शयन्तीत्युभयोः परस्परं पार्थक्यं विराजते। अतः दुर्जनस्य प्रीतिः क्रमशः दिवसपूर्वार्द्धभागसूर्यच्छायासदृशी वर्द्धते ह्रसते च तथा सुजनस्य स्नेहः दिनोत्तरार्द्धसूर्यच्छायावत् पूर्वं स्वल्पं पश्चाच्चोत्तरोत्तरं वर्द्धते इति भावः।

भाषार्थ—आरम्भ में बड़ी फिर धीरे-धीरे घटने वाली, पहले छोटी पर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पीछे धीरे-धीरे बढ़ने वाली, दिन के पूर्वभाग एवं दिन के उत्तरार्द्धभाग की छाया के समान खल और सज्जनों की मित्रता होती है। इस प्रकार दुर्जन एवं सुजनों की मैत्री में अन्तर निर्देश करते हुए कवि का कहना है कि दुर्जनों की मित्रता स्थायी नहीं होती, किन्तु सत्पुरुषों की मैत्री आरम्भ में चाहे कम ही क्यों न हो, पर कालान्तर में बढ़ती ही रहती है ॥ ६० ॥

अथेदानीम् अकरुणत्वमकारणविग्रहः—इति दुर्जनानां स्वभावं प्रकटयन् कारणमन्तरेणैव दुर्जना वैरायन्ते इति प्रदर्शयति—

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥ ६१ ॥

अन्वयः—जगति लुब्धक-धीवर-पिशुनाः तृण-जल-सन्तोषविहितवृत्तीनां मृग-मीन सज्जनानां निष्कारणवैरिणः (सन्ति)।

व्याख्या—जगति=संसारे। लुब्धक-धीवर-पिशुनाः—लुब्धकाः=व्याधाः, धीवराः=कैवर्ताः, पिशुनाः=दुर्जनाश्चेति लुब्धकधीवरपिशुनाः। तृणजल-सन्तोषविहितवृत्तीनाम्—तृणं=घासः, जलं=सलिलं, सन्तोषः=मनस्तुष्टिः, इति तृणजलसन्तोषाः, तैः विहिता=कल्पिता, वृत्तिः=जीवनं, येषां ते तृणजल-सन्तोषविहितवृत्तयः, तेषां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम्, न तु परोपतापोप-जीविनामित्यर्थः। मृगमीनसज्जनानां—मृगाश्च मीनाश्च सज्जनाश्च ते मृगमीन-सज्जनाः, तेषां मृगमीनसज्जनानां=हरिणमत्स्यसत्पुरुषाणाम्। निष्कारणवैरिणः—निष्कारणं=व्यर्थमेव, वैरिणः=शत्रव, इति निष्कारणवैरिणः=निर्हेतुकद्वेषिणः, घातुका इत्यर्थः अत्रास्ति आर्यावृत्तम्।

भावार्थः—व्याधानां धीवराणां पिशुनानां चैष दोषः स्वाभाविको वर्तते यत् लुब्धकाः केवलेन तृणेन स्वकीयं जीवनं निर्वहतां वन्यपशूनां जलमात्रेण जीवतां मत्स्यानां सन्तोषवृत्त्या चात्मीयं कार्यं सम्पादयतां सत्पुरुषाणां कारणं विनैव व्यर्थं वैरिणो भवन्ति।

भाषार्थ—इस विश्व में घास, पानी तथा सन्तोषवृत्ति से अपना जीवन बिताने वाले हरिण, मछली एवं सत्पुरुषों के क्रमशः बहेलिया, मल्लाह और दुर्जन लोग बिना कारण के ही शत्रु होते हैं। अर्थात् मृग का व्याध, मीन का मल्लाह और सज्जनों का दुर्जन अकारण ही वैरी होते हैं। यद्यपि ये इनसे कुछ भी नहीं माँगते, न इन्होंने इनका अपराध ही किया है, फिर भी ये दुष्ट इन निरीह प्राणियों को हमेशा कष्ट देते ही रहते हैं ॥ ६१ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ तद्वैलक्षण्येन सुजनसरणिं निरूपयितुमादौ प्रमाणपुरःसरं सद्गुण-भूषणान् आदरातिशयान् सज्जनान् नमस्करोति—

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम् ।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
येष्वेते निवसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥ ६२ ॥

अन्वयः—सज्जनसङ्गमे वाञ्छा, परगुणे प्रीतिः, गुरौ नम्रता, विद्यायां व्यसनम्, स्वयोषिति रतिः, लोकापवादात् भयम्, शूलिनि भक्तिः, आत्मदमने शक्तिः, खले संसर्गमुक्तिः, एते निर्मलगुणाः येषु वसन्ति तेभ्यः नरेभ्यः नमः (अस्तु) ।

व्याख्या—सज्जनसङ्गमे–सज्जनानां सङ्गमः सज्जनसङ्गमः, तस्मिन् सज्जनसङ्गमे=सत्पुरुषसमागमे । वाञ्छा=इच्छा-प्रवृत्तिः । परगुणे–परेषां गुणः परगुणः, तस्मिन् परगुणे=अन्यपुरुषदयादाक्षिण्यादौ । प्रीतिः=प्रसन्नता । गुरौ=पूज्ये पित्रादौ । नम्रता=विनयः । विद्यायां=ज्ञानार्जने । व्यसनम्=आसक्तिः । स्वयोषिति—स्वस्य योषित् स्वयोषित्, तस्यां स्वयोषिति=निजभार्यायाम्, पाणिगृहीत्याम् । रतिः=अनुरागः, प्रेमो वा । लोकापवादात्—लोकेऽपवादो लोकापवादः, तस्मात् लोकापवादात्=लोकनिन्दायाः । भयं=भीतिः । शूलिनि—शूलमस्ति अस्मिन्निति शूलि, तस्मिन् शूलिनि=त्रिशूलधारिणि भगवति सदाशिवे । भक्तिः=परानुरक्तिः । आत्मदमने—आत्मनि दमनमात्मदमनं, तस्मिन् आत्मदमने=आत्मनिग्रहे । शक्तिः=सामर्थ्यम् । खले=दुर्जनविषये । संसर्गमुक्तिः=सम्बन्धस्य त्यागः । एते=अमी । निर्मलगुणाः—निर्मलाश्च ते गुणाः निर्मलगुणाः=निष्कलङ्काः शुद्धाः सज्जनसमागमेच्छादयो गुणाः । येषु=नरेषु । वसन्ति=स्थितिं लभन्ते । तेभ्यः=तादृशगुणविशिष्टेभ्यः । नरेभ्यः=सत्पुरुषेभ्यः । नमः=नमस्कारोऽस्तु । अत्र तु छन्दोऽस्ति शार्दूलविक्रीडितं नाम ।

भावार्थः—सत्पुरुषसङ्गतिवाञ्छादिभिः निर्मलैः गुणैरलङ्कृता महान्तो मानवमणयः सज्जनशिरोमणयः पुरुषाः समस्तैर्जनैरादरणीया नमस्करणीया अनुकरणीयाश्च । इत्थं विशिष्टगुणानां मानवपुङ्गवानामेव नमस्कारार्हत्वादिति भावः ।

भाषार्थ—सज्जन पुरुषों के समागम में इच्छा, दूसरों के गुणों से अनुराग, गुरुजनों के प्रति विनम्रता, विद्या में अभिरुचि, अपनी पत्नी में अनुरक्ति लोकनिन्दा से डर, भगवान् शिव में भक्ति, अपने मन को दबाने की शक्ति तथा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दुर्जनों के संसर्ग का त्याग—ये सद्गुण जिनमें रहते हैं, उन महापुरुषों को नमस्कार है। अर्थात् वे सज्जन महापुरुष सदा वन्दनीय एवं सर्वथा प्रशंसनीय हैं, जो दूसरों का हमेशा हित चाहते हैं ॥ ६२ ॥

अथ सज्जनानां निसर्गसिद्धगुणगणं गणयति—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—विपदि धैर्यम्, अभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः, यशसि अभिरुचिः, श्रुतौ च व्यसनम्, हि इदं महात्मनां प्रकृतिसिद्धम् (अस्ति)।

व्याख्या—विपदि=विपत्तिकाले । धैर्यम्=धृतिः, निर्विकारचित्तत्वम्, न तु दैन्यम् । अथ=अपि च । अभ्युदये=सम्पदि । क्षमा=सहिष्णुत्वम् । सदसि=राजविद्वत्सभायाम् । वाक्पटुता=वाक्पाटवं, वाग्मित्वं न तु मूकभावः । युधि=सङ्ग्रामे रणाङ्गणे वा । विक्रमः=पराक्रमः, शौर्यप्रदर्शनं, न तु पलायनम् । यशसि=कीर्तौ । अभिरुचिः=विशिष्टं प्रेम न त्वनादरः । श्रुतौ=वेदशास्त्राभ्यसने । व्यसनम्=आसक्तिः, स्थिरा प्रवृत्तिः । हि=निश्चयेन । इदं=पूर्वोक्तं सर्वम् । महात्मनां – महान्=उदारः, आत्मा येषां ते महात्मानः, तेषां महात्मनाम्=महानुभावानां सुजनानाम् । प्रकृतिसिद्धं—प्रकृत्या=स्वभावेन, सिद्धं=निष्पन्नं, स्वभावसिद्धम् अस्ति । अत्र तु द्रुतविलम्बितं नाम वृत्तं विद्यते ।

भावार्थः—महापुरुषाणामेतत् स्वभावसिद्धमस्ति यत्ते विपत्तिकाले समयोचितं धैर्यधारणादिकं स्वभावतयैवावलम्बन्ते, न तु विविधायां परिस्थितौ विकृतिं गच्छन्ति । कष्टकालं सावधानतया ते निर्वहन्ति, अभ्युदये परापराधं क्षमन्ते, विद्वत्समाजे वचनरचनाचातुर्यं प्रकटयन्ति, रणाङ्गणे स्वीयं शौर्यं स्थापयन्ति, यशःप्रिया वेदाभ्यासनिरताश्च सन्तोऽन्यानपि तथैवाचरितुं शिक्षयन्ति ।

भाषार्थ—विपत्ति पड़ जाने पर धीरज, अधिक उन्नति होने पर क्षमा, सभा में उचित बोलने की चतुराई, सङ्ग्राम में पराक्रम, यश में अभिलाषा, वेदशास्त्र के पढ़ने में तत्परता, ये सब गुण महात्माओं में स्वभाव से सिद्ध होते हैं। अर्थात् महात्माओं के ये स्वाभाविक लक्षण होते हैं, उन्हें ये सब बातें किसी से सीखनी नहीं पड़ती हैं, क्योंकि वे आपत्काल में भी अपने मन का सन्तुलन बिगड़ने नहीं देते । ऐश्वर्यसम्पन्न होने पर भी उनमें क्षमा, सहिष्णुता आदि गुण अपने आप आ जाते हैं ॥ ६३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ प्रकारान्तरेणापि रहस्यमयं कल्याणकरमुपदेशं बोधयतां सतां चरितं निर्दिशति--

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः ।
अनुत्सेको लक्ष्म्यामनभिभवगन्धाः परकथाः
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥ ६४ ॥

अन्वयः—प्रदानं प्रच्छन्नम्, गृहम् उपगते सम्भ्रमविधिः, प्रियं कृत्वा मौनम्, अपि सदसि उपकृतेः कथनम्, लक्ष्म्याम् अनुत्सेकः, परकथाः अनभिभवगन्धाः, इदं विषमम् असिधाराव्रतं सतां केनोद्दिष्टम् ?

व्याख्या—प्रदानं=सत्पात्रेभ्यो दानम् । प्रच्छन्नम्=अप्रकाशम्, गुप्तदानमित्यर्थः । गृहं=निजमन्दिरम् । उपगते=प्राप्ते, अतिथौ अर्थिनी वा, सम्भ्रमविधिः—सम्भ्रमस्य=आदरस्य, विधिः=प्रदर्शनम्, न तु वैमुख्यम् । प्रियं=हितम् । कृत्वा=विधाय । मौनं=मूकभावः, न तु प्रकाशनम् । अपि च=अन्यच्च । सदसि=सभायाम्, सर्वजनप्रत्यक्षम् । उपकृतेः=उपकारस्य, अन्येन विहितस्य । कथनम्=वर्णनं, प्रकाशनं न तु तत्र तूष्णीम्भावः । अन्यथा कृतघ्नत्वप्रसङ्गापत्तिः । लक्ष्म्यां=सम्पत्तौ सत्याम् । अनुत्सेकः—न उत्सेकः अनुत्सेकः =गर्वराहित्यम्, न तु मदान्धत्वम् । परेषाम्=अन्येषाम् । कथाः=चरितकथाः । अनभिभवगन्धाः—नास्ति अभिभवस्य=आक्षेपस्य, निन्दाया वा गन्धः=लेशः, यासु ताः अनभिभवगन्धाः । इदमनुपदमेवोक्तं सर्वम् । विषमं=दुष्करम् । असिधाराव्रतम्=खड्गधारेव तीक्ष्णतरो नियमः । सतां=सत्पुरुषाणाम् । केन=केन पुंसा । उद्दिष्टम्=उपदिष्टम् ? न केनापीत्यर्थः । अत्र हि शिखरिणीनामकं वृत्तं वर्तते ।

भावार्थः—सत्पुरुषाणामेष नैसर्गिको विचारो विद्यते, यत्ते गुप्तदानं प्रदायापि न कथयन्ति स्वगृहागतानतिथीनर्थिनो वा प्रत्युत्थानाभिवादनसत्त्वव्यापारविधानं सस्नेहं विदधते । परकृतोपकारं न क्वचिदपि प्रकाशयन्ति । परेण पुंसा कृतं स्वोपकारं सर्वत्र प्रकाशयन्ति । सम्पत्तौ न मदान्धतां भजन्ते । अन्येषां सुचरितानि च सावधानतया शृण्वन्ति । एतत्पालनं सतां व्रतम् असिधारावदतितीक्ष्णं वर्तते इति भावः ।

भाषार्थ—गुप्तदान देना, अपने घर पर आये अतिथि का तत्परतापूर्वक सत्कार करना, दूसरे की भलाई करके चुप रहना, दूसरे के किये उपकार का समाज में कहना, धन पाकर भी गर्व नहीं करना, यह सज्जन पुरुषों को तलवार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की धार पर चलने के समान कठिन व्रत किसने बताया है ? अर्थात् सज्जन महापुरुषों में पूर्वोक्त सभी गुण होने के कारण उनके नियम की तुलना कठिन असिधारा व्रत से की जाती है ॥ ६४ ॥

अथ सज्जनानां प्रसिद्धविलक्षणमण्डनसम्पत्तिं निरूपयितुं तेषां करादिपु दानाद्यलङ्काराणां विद्यमानत्वेन व्यर्थमन्यैः प्राकृतिकैरलङ्कारैरिति दर्शयति—

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतिमधिगतं च श्रवणयो-
र्विनाऽप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥ ६५ ॥

अन्वयः—करे श्लाघ्यः त्यागः, शिरसि गुरुपादप्रणयिता, मुखे सत्या वाणी, भुजयोः विजयि अतुलं वीर्यम्, हृदि स्वच्छा वृत्तिः, श्रवणयोः अधिगतं श्रुतम्, इदम् ऐश्वर्यं विना अपि प्रकृतिमहतां मण्डनम् (अस्ति) ।

व्याख्या—करे=हस्ते । श्लाघ्यः=प्रशंसनीयः । त्यागः=दानम्, न तु कङ्कणम् । शिरसि=मस्तके । गुरुपादप्रणयिता—गुरोः=पित्रादेः, पूजनीय-जनस्य पादयोः=चरणयोः, प्रणयिता=स्नेहः. इति गुरुपादप्रणयिता= पूज्यपादप्रणामरूपो विनयः, न तु मणिहिरण्यादिः । मुखे=आनने । सत्या वाणी=सूनृतभाषणं न तु ताम्बूलचर्वणादिः । भुजयोः=बाह्वोः । विजयि= जयशीलम् । अतुलं—नास्ति तुला=साम्यं, यस्य तत् अतुलं=अद्भुतम् । वीर्यम्, न तु केयूरादिः । हृदि=हृदये । स्वच्छा=निर्मला । वृत्तिः=व्यापारः । श्रवणयोः=कर्णयोः । अधिगतम्=ज्ञातम् । श्रुतं=शास्त्रम् । इदम्=एतद् पूर्वोक्तम् । ऐश्वर्येण=विभूत्या सम्पत्त्या वा । विनापि=विनैव । प्रकृत्या= स्वभावेन, महान्त इति प्रकृतिमहान्तः, तेषां प्रकृतिमहताम्=स्वभावसज्ज-नानाम् । मण्डनम्=भूषणम् अस्ति । इदमपि पद्यं शिखरिणीछन्दसा निबद्धं वर्तते ।

भावार्थः—स्वभावतो महात्मनां लोकस्य च मण्डनं भिन्नं-भिन्नं भवति । तथाहि लोके कङ्कणेन करस्य, मुकुटेन शिरसः, ताम्बूलेन मुखस्य, केयूरेण भुजयोः, हारेण हृदयस्य, कुण्डलाभ्याञ्च कर्णयोः विशिष्टा शोभा जायते, किन्तु महापुरुषाणां दानेन करस्य, नम्रतया शिरसः वाङ्माधुर्येण मुखस्य, शौर्येण भुजयोः, नैर्मल्येन हृदयस्य, शास्त्रज्ञानेन च श्रुतेर्मण्डनं जायते । एव-मैश्वर्यं विनापि सत्पुरुषाणां लोकविचक्षणं भूषणं सर्वेषां श्लाघ्यतरं वरीवर्ति । तस्यैव लोकोत्तररामणीयकहेतुत्वादिति भावः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थ—हाथ में प्रशंसनीय दान, मस्तक पर गुरुचरणों में किया गया प्रणाम, मुख में सत्यभाषण, भुजाओं में विजयशील असामान्य पराक्रम, हृदय में शुद्धभाव, कानों द्वारा शास्त्र का श्रवण—ये सभी चीजें स्वभावतः महापुरुषों के लिए विना सम्पत्ति के भी भूषण हैं। इस प्रकार महात्माओं को लौकिक आभूषणों की कभी आवश्यकता नहीं हुआ करती है। वे तो ऐश्वर्य के बिना भी अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते हैं। अतः उन्हें लौकिक आभूषणों को धारण करने की लालसा ही नहीं होती ॥ ६५ ॥

अथापत्सम्पदोः सुजनानां मनोवृत्तिं विवृणोति—

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् ॥ ६६ ॥

अन्वयः—महतां चित्तं सम्पत्सु उत्पलकोमलम्, आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् (भवति)।

व्याख्या—महतां=महात्मनां सज्जनानाम्। चित्तं=हृदयम्। सम्पत्सु=विभवेषु। उत्पलकोमलम्—उत्पलवत् कोमलमुत्पलकोमलम्=कुवलयमृदुलम्। आपत्सु च=विपत्सु च कष्टेषु सत्सु। महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम्—महांश्चासौ शैलः महाशैलः=विशालपर्वतः, महाशैलस्य शिला महाशैलशिला, महाशैलशिलानां सङ्घातः महाशैलशिलासङ्घातः, महाशैलशिलासङ्घात इव कर्कशमिति महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम्=विशालगिरिग्रावसमूहकठिनम्, न तु अधैर्यविश्लथम्। भवति=जायते। अत्रास्ति अनुष्टुप् वृत्तम्।

भावार्थः—सम्पत्तौ सत्यामपि सज्जनानां हृदयं कमलवत् कोमलं तिष्ठति, तेन जनेषु दयमानास्तेताननुगृह्णन्ति। दैवाद् विपत्तावागतायां हृदयं पाषाणकूटवत् कठोरं कृत्वा सर्वं सहन्ते अन्यथा तन्माहात्म्यभङ्गप्रसङ्गः स्यात्। विवेकिनामविवेकिनां चायमेव पन्था आश्रयणीय इति तात्पर्यम्। श्लोके शैलस्य महत्त्वविशेषणं तच्छिलासङ्घातस्यात्यन्तदुर्भेद्यत्वद्योतनार्थम्। उक्तं चान्यत्रापि—

सौजन्यामृतसिन्धवः परहितप्रारब्धवीरव्रता
वाचालाः परवर्णने निजगुणालापे तु मौनव्रताः।
आपत्स्वप्यविलुप्तधैर्यनिधयः सम्पत्स्वनुत्सेकिनः
मा भूवन् खलवक्त्रनिर्गतविषम्लानाननाः सज्जनाः।

भावार्थ—सम्पत्ति प्राप्त होने पर बड़ों का मन कमल के समान कोमल होता है और वही आपत्ति काल में विशाल पहाड़ों की चट्टानों की तरह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अत्यन्त कठोर हो जाता है अर्थात् सज्जनों के आचरण की यही विलक्षणता है कि सम्पत्तिकाल में उनका हृदय अत्यन्त दयार्द्र हुआ करता है और विपत्ति-काल में अत्यन्त कठोर बन जाता है, जिससे वे सब सहन कर लेते हैं। अतः वस्तुतः सज्जन बड़े ही महान् हैं ॥ ६६ ॥

अथ वस्तुनि संसर्गबलादेवाधम-मध्यम-उत्तमादिगुणवत्त्वं भवतीत्युदाहरण-द्वारा दर्शयति—

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामाऽपि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते।
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ॥ ६७ ॥

अन्वयः—सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसः नाम अपि न ज्ञायते, तत् एव नलिनीपत्रस्थितं (सत्) मुक्ताकारतया राजते, तत् स्वात्यां सागरशुक्तिमध्य-पतितं (सत्) मौक्तिकं जायते, (हि) प्रायेण अधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतः जायते।

व्याख्या—सन्तप्तायसि—सन्तप्तः=वह्नौ प्रक्षेपाज्ज्वलितम्, अयः=लोह, इति सन्तप्तायः, तस्मिन् सन्तप्तायसि। संस्थितस्य=निक्षिप्तस्य, वर्तमानस्य वा। पयसः=जलस्य। नामापि=नामधेयमपि। न ज्ञायते=नावगम्यते। तदेव=तज्जलमेव। नलिनीपत्रस्थितं—नलिन्याः पत्रं नलिनीपत्रं, नलिनीपत्रे स्थित-मिति नलिनीपत्रस्थितं=कमलिनीपर्णलब्धस्थितिकम् (सत्)। मुक्ताकारतया-मुक्ताया=मौक्तिकस्य, आकारः=स्वरूपमिवाकारोऽस्यास्तीति मुक्ताकारः, तस्य भावः मुक्ताकारता, तया मुक्ताकारतया=मौक्तिकस्वरूपेण। राजते=शोभते। तत् पुनः तज्जलम्। स्वात्यां=स्वातीनक्षत्रयोगे। सागरशुक्तिमध्यपतितं–सागरे =समुद्रे, या शुक्तिः=मुक्तास्फोटः (यत्र मुक्ता मौक्तिकानि स्फुटन्ति=विक-सन्ति तद्वस्तु मुक्तास्फोट इत्युच्यते), तस्या मध्ये=अन्तराले, पतितं=गतं सत्। मौक्तिकं=मुक्तारत्नम्। जायते=भवति। हि=युक्तमेव। प्रायेण= बाहुल्येन। अधममध्यमोत्तमगुणः=अधमो मध्यम उत्तमश्च गुणः (अत्र प्रत्ये-काभिप्रायेणैकवचनम्)। संसर्गतः=तत्तद्वस्तुसम्बन्धवशात्। जायते= उद्भवति। आधारगता गुणा आधेये स्वसमानमेव गुणमुत्पादयन्तीत्यर्थः। अस्मिन् पद्ये शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं वर्तते।

भावार्थः—वस्तुतः स्थानविशेषेणैव कस्यापि वस्तुनः उत्कर्षापकर्षौ भवतः, न स्वरूपतः कस्याप्युत्तमाधममध्यमत्वं भवति। यथाऽनलेन सन्तप्ते लोहे प्रक्षिप्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पानीयं मूलतो ध्वस्तं भवति। सरसिजे विन्दुरूपेण स्थितं तत् मौक्तिकमिव दृश्यते। समुद्रे तु स्वातीनक्षत्रयोगे शुक्तिकाभ्यन्तरे गतं तदेव वास्तविकं मौक्तिकं भवति। अतो भूम्ना अधममध्यमोत्तमजुषाम् एवंविधा वृत्तयो भवन्तीत्यतः महदाश्रय एव कर्तव्यो न तु नीचाश्रयो विधेयः।

भाषार्थ—अग्नि से सन्तप्त लोहे पर गिरे हुए जल का निशान भी नहीं दीखता, कमल के पत्ते पर पड़ा हुआ वही जलबिन्दु मोती के आकार की तरह दीख पड़ता है, फिर वही जलकण स्वातीनक्षत्र में समुद्र की सीप में गिर कर मोती बन जाता है। प्रायः मनुष्यों में अधम, मध्यम एवं उत्तम गुण संसर्ग से ही हुआ करते हैं। इस प्रकार संगति का बहुत बड़ा प्रभाव हुआ करता है। इसलिए कहा गया है कि—'सत्सङ्गतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्' ॥ ६७ ॥

अथ सत्पुत्र-कलत्र-मित्र-सम्प्राप्तिः पुण्येनैव भवतीत्याह—

प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रो यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यदेतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥ ६८ ॥

अन्वयः—यः सुचरितैः पितरं प्रीणाति सः (एव) पुत्रः, यत् भर्तुः हितम् एव इच्छति तत् कलत्रम्। यत् आपदि सुखे च समक्रियं तत् मित्रम्, एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतः लभन्ते।

व्याख्या—यः=पुरुषः। सुचरितैः=आज्ञापालनादिरूपैः सदाचारैः। पितरं=जनकम्। प्रीणाति=सन्तोषयति। स एव पुत्रः=पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रशब्दवाच्यः सुतः कथ्यते, न तूत्पन्नमात्रः। यत् भर्तुः=पत्युः। हितं=कल्याणम्। इच्छति=वाञ्छति। तत् कलत्रम्=भार्या प्रोच्यते। यत् आपदि=आपत्तौ। सुखे=सम्पत्तौ च। समक्रियं—समा=तुल्या, एकरूपा, क्रिया=कार्यविशेषा, यस्य तत् समक्रियम्। मित्रं=सुहृद् उच्यते। एतत् त्रयं =पूर्वोक्तत्रयम्। जगति=लोके। पुण्यकृतः—पुण्यं=सुकृतं, कृतवन्त इति पुण्यकृतः सुकृतिनः। लभन्ते=प्राप्नुवन्ति, न त्वकृतसुकृता इत्यर्थः। अत्र वसन्ततिलकावृत्तं वर्तते।

भावार्थः—पितुराज्ञापालनादिपूर्वकं तदनुकूलाचरणकर्ता पुत्रः, पत्युर्हितमिच्छन्ति भक्त्या तदाज्ञापरिपालनतत्परा पत्नी, आपद्विपदोरेकरूपं सुहृद् चेति त्रयं महता पुण्येन प्राप्नोति मानवः। एवं च महतः पुण्यस्य फलं सुपुत्रप्राप्तिः, कुपुत्रोपलब्धिस्तु पापकर्मणां फलमस्तीति भावः।

भाषार्थ—जो अपने अच्छे आचरणों से पिता को प्रसन्न रखता है, वास्तव में वही पुत्र है। जो अपने पति की भलाई करती है, वही वस्तुतः पत्नी है और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो सुख एवं दुःख में समान व्यवहार करता है, वही सच्चा मित्र है। संसार में इन तीनों को पुण्यवान् ही प्राप्त करते हैं, अर्थात् सदाचारी पुत्र, पति की आज्ञापालिनी और हितकारिणी स्त्री एवं सुख-दुःख में समान व्यवहारी मित्र —इन तीनों का लाभ मनुष्य के जीवन में सच्चा सुख है। ये बड़े पुण्यों से ही प्राप्त होने वाले हैं ॥ ६८ ॥

अथेदानीमिच्छानुसारं द्वयोः किमप्येकमेवाश्रयणीयमिति स्पष्टयति—

एको देवः केशवो वा शिवो वा ह्येकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा।
एको वासः पत्तने वा वने वा ह्येका भार्या सुन्दरी वा दरी वा ॥ ६९ ॥

अन्वयः—(अस्मिन् संसारे) देवः एक एव (आश्रयणीयः) केशवो वा शिवो वा, मित्रम् एकं (कर्तव्यम्) भूपतिः वा यतिर्वा, वासः एकः (कर्तव्यः) पत्तने वा वने वा, नारी एका (विधेया) सुन्दरी वा दरी वा।

व्याख्या—देवः=इष्टदेवः। एकः=एक एव आश्रयणीयः। केशवः= भगवान् विष्णुः। वा शिवः=शङ्करो वा, द्वयोरनयोर्मध्ये कोऽप्यन्यतर आश्रयणीय इत्यर्थः। मित्रं=सुहृत्। एकं=एकमेव कर्तव्यम्। भूपतिः=नृपतिः। वा=अथवा। यतिः=विरक्तो वा। उभयोर्मध्ये भोगी योगी वा एकमेव मित्रं कार्यम्। वासः=स्थितिः। एकत्रैव कर्तव्यः। पत्तने=नगरे। वने=अरण्ये वा। भार्या=नारी। एका कर्तव्या। सुन्दरी=सौन्दर्ययुक्ता काचित् कान्ता। दरी वा=अथवा पर्वतस्य कन्दरा। अस्मिन् पद्ये मालिनीनामकं वृत्तं वर्तते।

भावार्थः—अस्मिन् संसारे मानवेन शिव-केशवयोः कश्चिदेक एव देवोऽवलम्बनीयः। योगिभोगिनोरन्यतरं मित्रं कार्यम्। निवासस्थानमेकत्रैव ग्रामे नगरे वा विधेयम्। एकैव भार्या सौन्दर्यपूर्णा, पर्वतस्य गुहा वा विधेया। उभयत्र स्नेहं वहन् उभयं यथावत् साधयितुमशक्नुवन् मानव इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट इत्यनुसारमसफलः स्यादित्यर्थः।

भाषार्थ—इस संसार में मनुष्य का एक ही इष्टदेव होना चाहिए, वे भगवान् विष्णु हों या शङ्कर। एक ही मित्र होना चाहिए, वह राजा हो अथवा योगी। एक ही निश्चित स्थान होना चाहिए, वह नगर में या जङ्गल में हो। एक ही पत्नी भी होनी चाहिए, वह सुन्दरी स्त्री हो या पर्वत की कन्दरा हो ॥ ६९ ॥

अथ सन्तोऽसाधारण-नम्रादिगुणगरिमास्पदत्वेन सकललोकपूज्या भवन्तीत्याह—

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः
स्वार्थान् सम्पादयन्तो विततपृथुतरारम्भयत्नाः परार्थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्षान्त्यैवाऽऽक्षेपरुक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्जनान् दूषयन्तः
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः ? ॥ ७० ॥

अन्वयः—नम्रत्वेन उन्नमन्तः, परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः परार्थे विततपृथुतरारम्भयत्नाः (सन्तः) स्वार्थान् सम्पादयन्तः क्षान्त्या एव आक्षेपरुक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्जनान् दूषयन्तः साश्चर्यचर्याः जगति बहुमताः सन्तः कस्य न अभ्यर्चनीयाः ?

व्याख्या—नम्रत्वेन = विनयेन । उन्नमन्तः = उन्नतिं प्राप्नुवन्तः । परगुणकथनैः—परेषां गुणाः परगुणाः, तेषां कथनानि परगुणकथनानि, तैः परगुणकथनैः = अन्यगुणवर्णनैः । स्वान् = स्वकीयान् । गुणान् = सौजन्यादीन् । ख्यापयन्तः = प्रकटयन्तः । परार्थे = परप्रयोजने । विततपृथुतरारम्भयत्नाः—वितती = विस्तृतौ, पृथुतरौ = महत्तरौ, चारम्भयत्नौ येषां ते विततपृथुतरारम्भयत्नाः सन्त एव । स्वार्थान् = निजप्रयोजनानि । सम्पादयन्तः = साधयन्तः । परकार्यसाधनपुरस्सरेणैवात्मीयकार्यसाधनतत्परा इत्यर्थः । क्षान्त्या = सहिष्णुतया । आक्षेपरुक्षाक्षरमुखरमुखान्—आक्षेपेण = निन्दया, रुक्षाक्षराणि = परुषाणि अक्षराणि, इति आक्षेपरुक्षाक्षराणि, तैः मुखराणि = वाचालानि, मुखानि = वदनानि, येषां ते आक्षेपरुक्षाक्षरमुखरमुखाः, तान् आक्षेपरुक्षाक्षरमुखरमुखान् = रुक्षीयपरुषभाषिणः । दुर्जनान् = खलान्, दुष्टपुरुषान् । दूषयन्तः = सन्तापयन्तः । साश्चर्यचर्याः—साश्चर्याः = आश्चर्यकारिणी, चर्या = चेष्टा, येषां ते साश्चर्यचर्याः = अद्भुतचरित्राः । जगति = लोके । बहुमताः = सम्भाविताः । सन्तः = सत्पुरुषाः । कस्य = पुरुषस्य । न अभ्यर्चनीयाः = न पूजनीयाः, अपितु सर्वेषामेवाभ्यर्चनीया एव सन्ति । पद्येऽस्मिन्नस्ति स्रग्धरावृत्तम् ।

भावार्थः—सत्पुरुषा हि विनयादिगुणगणाद्यैरेवात्मनः समुन्नतिं कुर्वन्ति, परगुणवर्णनद्वारैवात्मनो गुणं ख्यापयन्ति, परगुणप्रयोजननिर्वहणद्वारा स्वार्थसाधनं कुर्वन्ति, निन्दाकर्तृषु कटुभाषिषु स्वसहनशीलतयैव दुर्जनान् दूषयन्ति । तथाऽद्भुतचरित्रा विचित्रस्वभावाः संसारे सर्वेषां पूजनीया भवन्ति, तथाभूतगुणसम्पन्नानां सज्जनानां दुर्लभत्वादिति भावः ।

भाषार्थ—विनम्रता से ही अपनी उन्नति करने वाले, दूसरों के गुणों के कथन द्वारा ही अपने गुणों की प्रसिद्धि करने वाले, दूसरों के कार्यों को सिद्ध करने के लिए ही प्रयत्न करते हुए अपने स्वार्थ का सम्पादन करने वाले, निन्दावचन के रूखे अक्षरों से वाचाल मुख वाले, दुर्जनों को क्षमा देने के द्वारा ही

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपराधी ठहराने वाले, आश्चर्यजनक आचरण करने वाले सम्मानित सज्जन इस संसार में किसके पूज्य नहीं होते ? अर्थात् अपने विनयादि सद्गुणों के द्वारा सत्पुरुष सम्मानपात्र बन जाते हैं। इस प्रकार सज्जनों का व्यवहार सर्वत्र सन्तुलित एवं प्रशंसनीय होता है ॥ ७० ॥

अथ सौजन्यस्य परोपकारफलकत्वात्तन्निरूपणानन्तरमिदानीं परोपकारिणां सत्पुरुषाणां स्वभावं वर्णयति—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरावलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ ७१ ॥

अन्वयः—तरवः फलोद्गमैः नम्रा भवन्ति, घनाः नवाम्बुभिः दूरविलम्बिनः (भवन्ति), सत्पुरुषाः समृद्धिभिः अनुद्धताः (भवन्ति), एषः परोपकारिणां स्वभाव एव (अस्ति)।

व्याख्या—तरवः = रसालादिवृक्षाः। फलोद्गमैः = फलानां प्रादुर्भावैः, फलभारैः। नम्राः = अवनताः। भवन्ति = जायन्ते। घनाः = मेघाः। नवाम्बुभिः—नवानि च तानि अम्बूनि इति नवाम्बूनि, तैः नवाम्बुभिः = नूतनैः जलैः। दूरविलम्बिनः—दूरं = दूरपर्यन्तं, नीचैः भूमिपर्यन्तं, विलम्बन्ते = नम्रा भवन्ति इति दूरविलम्बिनः। भवन्ति = वर्षणार्थमन्तरिक्षादधः सञ्चरन्ति। सत्पुरुषाः = सज्जनाः। समृद्धिभिः = धनधान्यसम्पत्तिभिः, अन्नादंशेषैरपि। अनुद्धताः—न उद्धताः अनुद्धताः = विनीताः। भवन्ति = जायन्ते। एषः = अयं नम्रत्वादिव्यवहारः। परोपकारिणां = परहिताचरणतत्पराणाम्। स्वभाव एव = प्रकृतिरेवास्ति। अस्मिन् श्लोके वंशस्थनामकमस्ति छन्दः।

भावार्थः—फलवन्तो वृक्षाः, सजला मेघाः, समृद्धिशालिनः सत्पुरुषाः स्वभावत एव विनम्रा भवन्ति। महान्तो हि परोपकारार्थमेव क्लेशं न क्लेशत्वेन गणयन्ति, परोपकारपरायणानां तेषां स्वभावादिति भावः।

भाषार्थ—फल लगने से आम्र आदि के वृक्ष झुक जाते हैं, मेघ नये जल से दूर तक नीचे लटक जाते हैं, सज्जन पुरुष ऐश्वर्य प्राप्ति से विनम्र हो जाते हैं। यह नम्र होना परोपकारियों का स्वभाव ही होता है, अर्थात् परोपकारी पुरुषों का यह स्वभाव ही होता है कि वे कभी भी अभिमान नहीं करते। अभिमान ही तो उद्धतपना का कारण है, अभिमानरहित व्यक्ति का नम्र होना स्वभाव ही है। इसलिए सम्पत्तिशाली व्यक्ति का सबसे विनम्रता का व्यवहार, वृक्षों एवं मेघों का झुक जाना स्वाभाविक है ॥ ७१ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ परोपकारिणां मुख्यमण्डनमभिधातुमुपक्रमते—

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन ।। ७२।।

अन्वयः—श्रोत्रं श्रुतेन एव विभाति कुण्डलेन न, पाणिः दानेन (विभाति) कङ्कणेन तु न, करुणापराणां कायः परोपकारैः (विभाति) चन्दनेन तु न ।

व्याख्या—श्रोत्रं=कर्णः । श्रुतेन=वेदशास्त्रादिवर्णनेनैव । विभाति=विशेषेण शोभते । कुण्डलेन=कर्णवेष्टनेन, सुवर्णमयभूषणेन न तु विभाति । पाणिः=हस्तः । दानेन=सत्पात्रादिभ्यो धनादिवितरणेन विभाति । कङ्कणेन=कनकवलयेन तु न विभाति । करुणापराणां=दयालूनां पुरुषाणाम् । कायः=शरीरम् । परोपकारैः=परेषां हितकरणैः विभाति, चन्दनेन=घनसार-केशर-कस्तूरीलेपनेन तु न विभाति । अत्र पद्ये उपजातिनामकमस्ति वृत्तम् ।

भावार्थः—मनुष्या हि लोके कर्णं कुण्डलेन, करं कङ्कणेन, देहं च चन्दनलेपेन विभूषयन्ति, परं वस्तुतः कर्णे धर्मशास्त्रादिश्रवणेन, करे सत्पात्रेभ्यः सम्पत्तिवितरणेन, शरीरे च परोपकारेणैव सौन्दर्यविशेषो जायते । अतः कृपापराः सन्तः सततं परोपकारमेवाचरन्ति । महात्मनां मुख्यं मण्डनं शास्त्रश्रवणादिकमेव स्वाभाविकं भवति न त्वन्यत्, तस्य नश्वरत्वादिति भावः ।

भाषार्थ—कान शास्त्रों के श्रवण से ही सुशोभित होता है, कुण्डल पहनने से नहीं । हाथ की शोभा सत्पात्र में दान देने से ही होती है, न कि कङ्कण पहनने से । करुणापरायण—दयाशील पुरुषों का शरीर परोपकार से ही शोभित होता है, न कि चन्दन लगाने से । अर्थात् कुण्डल तथा चन्दन आदि लेप तो कभी भी नष्ट हो सकते हैं, किन्तु सज्जनों का शास्त्रज्ञान, दान एवं परोपकार सदा अनुकरणीय होता है ।। ७२ ।।

अथ सन्मित्रलक्षणं निरूपयन्नाह—

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ।। ७३ ।।

अन्वयः—सन्तः सन्मित्रलक्षणम् इदं प्रवदन्ति यत् सन्मित्रं पापात् निवारयति, हिताय योजयते, गुह्यं निगूहति, गुणान् प्रकटीकरोति, आपद्गतं न जहाति, काले च ददाति ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—सन्तः=सज्जनाः। सन्मित्रलक्षणम्—निष्कपटसुहृदो लक्षणं=चिह्नम्। इदं=वक्ष्यमाणम्। प्रवदन्ति=निगदन्ति, कथयन्ति निरूपयन्ति वा। यत् सन्मित्रं=सुसखा। पापात्=पापाचरणात्, दुराचारात्। निवारयति=निवर्तयति। हिताय=हितकराय कर्मणे, सत्कर्माचरितुम्। योजयते=प्रवर्तयति। गुह्यं=गोप्यं, संवरणीयम्। निगूहति=आच्छादयति, संवृणोति वा। गुणान्=सौशील्यादीन् सद्गुणान्। प्रकटीकरोति=प्रख्यापयति। आपद्गतं=अतिसङ्कटस्थमपि। न जहाति=न त्यजति। काले=व्यसनादिसमये च। ददाति=वाञ्छितं दिशति। पद्येऽत्र वसन्ततिलकानामकं वृत्तं वर्तते।

भावार्थः—सज्जना हि सन्मित्रस्येदमेव लक्षणं निर्दिशन्ति यत् तद् हानिकारकात् कर्मणो निवार्य स्वकीयं सुहृदं श्रेयस्करे कर्मणि प्रेरयति। पुरातनं तदीयं दुष्कृतं सङ्गोप्य सुकृतं प्रकाशयति। आपदादिसङ्कटसमये मित्रसहभावं न त्यजति, समयोचितं च साहाय्यं कुरुते। तथा हि सन्मित्रं धर्मोपदेशेन दुष्कृतप्रवृत्तेर्विरमयति, सत्कर्माचरणाय प्रवर्तयति, यद्वा श्रेयःसङ्ग्रहार्थं प्रोत्साहयति, गोपनीयं न कुत्रापि प्रकटयति, प्रत्युत सद्गुणान् प्रख्यापयति, सङ्कटस्थं न कदापि परित्यजति, योग्यकाले च वाञ्छितं प्रयच्छति। तदिदं पापनिवारणादिकं सर्वं सन्तोऽकैतवसुहृदः स्वरूपमुपस्थापयन्तीति भावः।

भाषार्थ—सज्जन लोग अच्छे मित्र का यही लक्षण बतलाते हैं कि वह मित्र को पाप से रोकता है, कल्याणकारी कामों में लगाता है, गुप्त बातों को छिपाता है, गुणों को प्रकट करता है, विपत्ति पड़ने पर साथ नहीं छोड़ता तथा समय आने पर सहायता देता है। अर्थात् सच्चा मित्र वही है, जो अपने मित्र की हमेशा भलाई करता है॥ ७३॥

सत्पुरुषाः स्वत एव परेषां हिते प्रवृत्ताः भवन्तीत्युदाहरणप्रदर्शनद्वारा निर्दिशति—

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहिते विहिताभियोगाः॥ ७४॥

अन्वयः—न अभ्यर्थितः दिनकरः पद्माकरं विकचीकरोति, (नाभ्यर्थितः) चन्द्रः कैरवचक्रवालं विकासयति, जलधरोऽपि (न अभ्यर्थित एव) जलं ददाति, (हि) सन्तः स्वयं परहिते विहिताभियोगाः (भवन्ति)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—नाभ्यर्थितः—न अभ्यर्थितो नाभ्यर्थितः=अप्रार्थितः, अयाचितः। दिनकरः—दिनं करोतीति दिनकरः=सूर्यः। पद्माकरं—पद्मानामाकरः पद्माकरः, तं पद्माकरं=कमलवनम्। विकचीकरोति—न विकचमविकचम्, अविकचं विकचं करोतीति विकचीकरोति=विकासयति। नाभ्यर्थितः चन्द्रोऽपि=सुधांशुरपि। कैरवचक्रवालम्=कुमुदखण्डम्। विकासयति=विकसितं करोति। नाभ्यर्थितः जलधरोऽपि—जलं धरतीति जलधरः=मेघोऽपि। जलं=सलिलम्। ददाति=वितरति। हि=युक्तमेव। सन्तः=सज्जनाः। स्वयमप्रार्थिता अपि स्वेच्छयैव परहिते—परेषामन्येषां हितं परहितं, तस्मिन् परहिते=जनहिताचरणे। विहिताभियोगाः—विहितः=कृतः, अभियोगो=योगः, सम्बन्धः, प्रवृत्तिर्यैस्ते विहिताभियोगाः=कृताभिनिवेशाः भवन्ति। अस्मिन् श्लोके वसन्ततिलकानामकमस्ति छन्दः।

भावार्थः—यथा भगवान् भास्करः स्वयमेव कमलवनं, चन्द्रश्च कैरवं विकासयन्, वारिवाहो जलं वर्षन्, लोकानुपकरोति, तथैव केनाप्यनुक्ता अपि सत्पुरुषा लोकानां हिताचरणं कुर्वन्ति। अतो युक्तमेवैतेषां परहिताचरणमिति भावः।

भाषार्थ—बिना याचना किये ही सूर्य कमल-समूह को विकसित करते हैं, चन्द्रमा कुमुदों को खिला देते हैं तथा बादल भी बिना प्रार्थना पानी बरसाता है। इसी प्रकार सज्जन भी अपने आप दूसरों की भलाई में कटिबद्ध रहते हैं। अर्थात् परोपकार करने के लिए सज्जनों को किसी की प्रेरणा करने की आवश्यकता नहीं होती है, वे तो स्वयं ही परहित में प्रवृत्त रहते हैं॥ ७४॥

तत्तत्कार्यविशेषैर्मानवानामुत्तम-मध्यमाधम-निकृष्टत्वं विवृणोति—

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाऽविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥ ७५॥

अन्वयः—ये स्वार्थं परित्यज्य परार्थघटकाः एके सत्पुरुषाः, ये स्वार्थाविरोधेन परार्थम् उद्यमभृतः (ते) तु सामान्याः, ये स्वार्थाय परहितं निघ्नन्ति ते अमी मानुषराक्षसाः, ये तु निरर्थकं परहितं घ्नन्ति ते के? (इति वयम्) न जानीमहे।

व्याख्या—ये=पुमांसः। स्वार्थम्=स्वं प्रयोजनम्। परित्यज्य=त्यक्त्वा। परार्थघटकाः—परेषामन्येषामर्थस्य=प्रयोजनस्य, घटकाः=साधकाः, इति परार्थ-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घटका:=परप्रयोजनसाधनशीला: भवन्ति ते। एके सत्पुरुषा:=पुरुषोत्तमा:, सत्त्वस्य तैरेवाभिव्यक्तत्वादिति भाव:। ये तु स्वार्थाविरोधेन—स्वार्थस्य=निजकार्यस्य अविरोधेन=प्रातिकूल्याभावेन, स्वार्थनिर्वाहितत्परत्वेनैव। परार्थं=परप्रयोजननिर्वाहार्थम्। उद्यमभृत:—उद्यमं=प्रयत्नं, बिभ्रति=धारयन्ति कुर्वन्तीत्युद्यमभृत:=उद्योगभाज: ते। सामान्या:=साधारणा: नाधिका न वाऽल्पा मध्यमपुरुषास्ते सन्ति। ये तु विचित्रचरित्रा: स्वार्थाय=स्वार्थनिष्पत्त्यर्थम्। परहितं—परेषां हितं=भद्रं, परहितम्=परप्रयोजनम्। निघ्नन्ति=नाशयन्ति। अमी मानुषराक्षसा:—मानुषेषु=नरेषु, राक्षसा:=राक्षसरूपा:, राक्षसप्रकृतय: मनुष्या:, मानुषशब्दवाच्या राक्षसा: तथा क्रूराचारतत्परत्वात् पुरुषाधमा: कथ्यन्ते। ये ते निरर्थकम्=निष्फलं, स्वप्रयोजने राहित्येनापि। परहितं=परप्रयोजनम्। घ्नन्ति=विध्वंसयन्ति ते तत्कार्यविध्वंसका: ते। के=किन्नामधेया: के वा कथं भूता वा? इति वयम्। न जानीमहे=न विद्म:। पद्येऽस्मिन् शार्दूलविक्रीडितं नाम वृत्तं विद्यते।

भावार्थ:—विश्वस्मिन्नस्मिन् प्राय: त्रिधा भवन्ति पुरुषा:—उत्तमा मध्यमा अधमाश्च। तत्र स्वार्थं विहाय परार्थं साधयन्त उत्तमकोटिका: पुमांस: विरला एव उपलभ्यन्ते। स्वार्थेन सह परार्थं कुर्वन्त: मध्यमकोटिका: भवन्ति। स्वकार्यार्थं परार्थविध्वंसका मानवा अधमकोटिका: सन्ति। तत्र प्रथमे स्वार्थहीना:, द्वितीये परार्थसाधका: तृतीये केवलं स्वार्थसाधका भवन्ति। किन्तु उक्तत्रिविधपुरुषविलक्षणा: परेषामहितमेवात्मीय स्वार्थं मन्यमाना नराधमा: पशुसमाना: सर्वत्रोपेक्ष्या एवेति भाव:।

भाषार्थ—इस विश्व में एक वे सज्जन हैं, जो अपने हित का त्याग कर दूसरों की भलाई करते हैं। कुछ लोग साधारण श्रेणी के होते हैं, जो अपने स्वार्थ की हानि होने पर ही परोपकार के लिए उद्योग करते हैं। जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों के हित को नष्ट करते हैं, वे नराधम मनुष्य रूप में राक्षस हैं, परन्तु जो व्यर्थ ही दूसरों के हित का नाश करते हैं, वे कौन हैं? यह हम नहीं जानते। अर्थात् इस पद में मनुष्यों की चार श्रेणियाँ हैं—उत्तम, मध्यम, अधम और निकृष्ट। उत्तम पुरुष अपने स्वार्थ का ध्यान न कर दूसरों का हित करते रहते हैं। मध्यम पुरुष अपने हित की हानि न करते हुए दूसरों की भलाई करते हैं। अधम पुरुष स्वार्थ के लिए परहित में बाधा उपस्थित करते हैं और निकृष्ट मनुष्य वे हैं, जो व्यर्थ ही दूसरों के हित का विनाश करते हैं॥ ७५॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथेदानीं सतां सौहार्दस्य स्वरूपं नीर-क्षीरदृष्टान्तेन विशदयति—

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ता पुरा तेऽखिलाः
क्षीरोत्तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशानौ हुतः ।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥ ७६ ॥

अन्वयः—पुरा क्षीरेण आत्मगतोदकाय अखिलाः ते (स्वे) गुणा दत्ताः हि तेन पयसा क्षीरोत्तापम् अवेक्ष्य स्वात्मा कृशानौ हुतः, तद् तु मित्रापदं दृष्ट्वा पावकं गन्तुम् उन्मनः अभवत्, तेन जलेन युक्तं (सद् तद्) शाम्यति । सतां मैत्री तु पुनः ईदृशी ।

व्याख्या—पुरा=पूर्वम् । क्षीरेण=दुग्धेन । आत्मगतोदकाय—आत्मनि=स्वस्मिन्, गतं=प्राप्तमुदकं=जलमिति आत्मगतोदकं, आत्मगतं च उदकं चेति आत्मगतोदकं वा, तस्मै आत्मगतोदकाय=स्वमिश्रितजलाय । अखिलाः=सर्वे । ते—प्रसिद्धाः स्वकीयाः । गुणाः=धवलत्वमधुरत्वादयः । दत्ताः=समर्पिताः । हि=खलु, स्वगुणप्रदान-द्वारा मैत्री सम्पादिता । तेन=दुग्धमिश्रितजलेन । पयसा=जलेन । क्षीरोत्तापम्—क्षीरस्य=श्रपणार्थं वह्नौ निक्षिप्तस्य दुग्धस्य, उत्तापम्=वह्निसंयोगादुद्भूतं सन्तापम् । अवेक्ष्य=अवलोक्य । स्वात्मा—स्वस्यात्मा स्वात्मा=निजशरीरम् । कृशानौ=वह्नौ । हुतः=प्रक्षिप्तः, मित्रसन्तापसहनाद् संशोषितः । तत्तु=सन्तप्तं दुग्धं पुनः । मित्रापदम्—मित्रस्य=सुहृदो जलस्य, आपदं=शरीरत्यागरूपां विपदम् । दृष्ट्वा=वीक्ष्य । पावकम्=अग्निम् । गन्तुं=प्रवेष्टुम् । उन्मनः—उत्=उत्कम्, उत्कण्ठितं, मनो=हृदयं, यस्य तत् उन्मनः=उत्कण्ठितम् । अभवत्=अजायत । तदनन्तरं तेन=मिश्रितजलेन । युक्तं=मिलितम् । सत् तत्=दुग्धम् । शाम्यति=सन्तापशून्यं प्रशान्तं भवति । स्वस्वरूपं प्राप्नोतीत्यर्थः । सतां=सज्जनानाम् । मैत्री=मित्रता, स्नेहः । पुनस्तु युक्तम् । ईदृशी=परस्परव्यसनासहनशीला स्थिरा । भवतीति शेषः । अस्मिन् पद्ये तु शार्दूलविक्रीडितनामकं छन्दो विद्यते ।

भावार्थः—दुग्धं पूर्वं स्वस्मिन् पक्षिप्ताय जलाय नैजं धवलिमानं प्रदाय तेन साकं मैत्री सम्पाद्यैकीभूतं भवति । तदनन्तरं श्रपणार्थमग्नौ स्थापितं सत् मित्रं जलं ज्वलद् दृष्ट्वा उच्छलत् वह्निं शमयितुमुद्यतं पुनः पानीयं प्राप्य प्रशाम्यति । अत्र स्वभावसिद्धस्य नीरक्षीरव्यवहारस्य परस्परानुतापप्रदर्शन-द्वारा शरणागतसंरक्षणपूर्वकं प्राणिषु स्नेहस्यावश्यकत्वमुपदिष्टं भवतीति भावः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भाषार्थ—पहले दूध ने अपने में मिले हुए पानी को अपना श्वेतपन दे एकरूप होकर मित्रता कर ली। जब दूध आग पर रखा गया, तब उसका सन्ताप (जलना) देखकर पानी ने अपने आपको जला दिया। पुनः अपने मित्र जल की विपत्ति देखकर वह दूध भी उफन कर आग को बुझा देने के निमित्त उद्विग्न हो उठा, फिर जल से युक्त होकर उफनता हुआ दूध शान्त हो गया। वस्तुतः दूध और पानी की मित्रता एक आदर्श मित्रता मानी जाती है। सज्जनों की मित्रता इसी प्रकार की होती है। वे विपत्तिग्रस्त मित्र को देखकर उसकी सहायता में तत्काल तत्पर हो जाते हैं ॥ ७६ ॥

महापुरुषाणामुदात्तं चरितमवर्णनीयं भवतीत्युदाहरणद्वारा दर्शयति—

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते।
इतोऽपि वडवानलः सह समस्तसंवर्तकै-
रहो! विततमूर्जितं भरसहं सिन्धोर्वपुः ॥ ७७ ॥

अन्वयः—इतः केशवः स्वपिति, इतः तदीयद्विषां कुलं (तिष्ठति), इतः च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते, इतः अपि समस्तसंवर्तकैः सह वडवानलः (तिष्ठति), अहो! सिन्धोः वपुः विततम् ऊर्जितं भरसहं च (वर्तते)।

व्याख्या—इतः=एकस्मिन् प्रदेशे। केशवः=कुक्षिस्थाखिलभुवनो भगवान् विष्णुः। स्वपिति=शेते, निद्राति। इतः=अन्यस्मिन् प्रदेशे। तदीयद्विषां—तस्येमे तदीयाः, तदीयाश्च ते द्विषः तदीयद्विषः, तेषां तदीयद्विषां=विष्णुशत्रूणां दैत्यानाम्। कुलम्=समूहः तिष्ठति। इतः=ततोऽन्यस्मिन् प्रदेशे। शरणार्थिनां=शरणाभिलाषिणाम्। शिखरिणां=मैनाकादिपर्वतानाम्। गणाः=समूहाः। शेरते=स्वपन्ति। इतोऽपि=अपरस्मिन् प्रदेशे। समस्तसंवर्तकैः—समस्ताः च ते संवर्तकाः समस्तसंवर्तकाः, तैः समस्तसंवर्तकैः=सकलप्रलयकालीनैः मेघविशेषैः, अग्निविशेषैः वा। सह=साकम्। वडवानलः=वडवानलनामकः प्रलयाग्निः अपि। वसति=तिष्ठति। अहो!=आश्चर्यम्! सिन्धोः=समुद्रस्य। वपुः=शरीरम्। विततं=विस्तृतं परममहत्परिमाणम्। ऊर्जितं बलशालि। अत एव भरसहं—भरं=भारं, सहते इति भरसहं=केशवादिभारधारणसमर्थं च वर्तते। पद्येऽस्मिन् पृथ्वीवृत्तं वर्तते।

भावार्थः—समुद्रस्य शरीरं केशवादीनामाधारत्वे विस्तृतं वडवानलाश्रयत्वेनातिवर्द्धिष्णुः, पर्वतभरणेन भारोद्वहनक्षमं चाप्रमेयानुभावत्वेनात्यन्ताश्चर्यंकरं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्तते। अत्र लक्षयोजनपरिच्छिन्नस्य समुद्रस्यापरिच्छिन्नकेशत्राद्याधारत्वेनात्यन्तमाश्चर्यकरं प्रतीयते। एवं समेषां शरणसमागतानामाश्रयदातारो महामहिमशालिनः महापुरुषा अवर्णनीयत्वेन नूनं सन्ति महान्त इति भावः।

भावार्थ—अहो ! समुद्र का शरीर कैसा विस्तृत, बलिष्ठ और भार सहने वाला है। इसमें एक ओर भगवान् विष्णु शयन करते हैं तो दूसरी ओर उनके शत्रु असुरों का समूह रहता है। फिर एक तरफ इन्द्र के भय से शरण में आये हुए मैनाक आदि पर्वतों का समूह छिप कर रहता है, तो दूसरी ओर प्रलयकालीन समस्त संवर्तक आदि मेघों के साथ वडवानल विराजमान है। इस प्रकार सबको शरण देने वाले समुद्र की महिमा महान् है, उसकी उदारता विशाल है तथा उसकी सहनशीलता अपूर्व है। अर्थात् महान् की महत्ता इसी में होती है कि वह शरण में आये हुए सभी को आश्रय देता है ॥ ७७ ॥

अथ पुनरपि सज्जनानां चेष्टितं निर्दिशन् विधेयलोकं सदाचारं शिक्षयति—

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।
मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय प्रश्रयं
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत् सतां चेष्टितम् ॥ ७८ ॥

अन्वयः—(हे मनुष्य !) तृष्णां छिन्धि, क्षमां भज, मदं जहि, पापे रतिं मा कृथाः, सत्यं ब्रूहि, साधुपदवीम् अनुयाहि, विद्वज्जनं सेवस्व, मान्यान् मानय, विद्विषः अपि अनुनय, स्वान् गुणान् प्रश्रयं प्रख्यापय, कीर्तिं पालय, दुःखिते दयां कुरु, एतत् सतां चेष्टितं लक्षणम् (अस्ति)।

व्याख्या—हे मनुष्य ! तृष्णाम्=परधनेऽभिलापम्। स्पृहां छिन्धि=वैराग्येण विदारय त्यज। अन्यथा अनेकाशापाशनिबद्धत्वेन क्लेशभागित्वं स्यात्। क्षमाम्=सहनशीलताम्। भज=विवेकेन सेवस्व। अन्यथा उग्रभावेन कार्यहानिः स्यात्। मदम्=विद्याधनादिजन्यं दर्पम्। जहि=विज्ञानेन विनाशय। अन्यथा अविवेकशून्यतया अकार्यकरणप्रवृत्तौ अनर्थप्राप्तिः सम्भवेत्। पापे=पापकर्माचरणे दुष्कर्मणि। रतिम्=प्रीतिम्। मा कृथाः=न विधेहि, किन्तु सत्कर्माचरणे मतिं कुरु। सत्यम्=तथ्यं, यथार्थं, सूनृतम्। ब्रूहि=वद। साधुपदवीम्—साधूनां=सज्जनानां, पदवीं=मार्गम्, सन्मार्गम्। अनुयाहि=धर्मशास्त्रानुरोधेन अनुसर। विद्वज्जनम्=पण्डितमण्डलम्। सेवस्व=बुद्धिवैशद्यार्थं शुश्रूषस्व। मान्यान्=पूज्यान्। मानय=यथार्हं पूजय। किं बहुना विद्विषः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

=शत्रून् अपि । अनुनय=सान्त्वय, प्रसादय । अन्यथा रन्ध्रेषु पातयिष्यन्ति ते । प्रश्रयम्=गुर्वाचार्यादिषु नम्रत्वम् । प्रख्यापय=प्रकटय । अन्यथा दुर्विनीतत्वापवादप्रसङ्गः प्रसज्येत । कीर्तिम्=यशः । पालय=रक्ष । जन्मसाफल्यार्थं कीर्तिनिर्वहणे प्रयत्नं कुरु । अन्यथा 'क्षितितले किं जन्म कीर्तिं विना' इति वचनात् भूतत्वापत्तिः स्यात् । दुःखिते—दुःखं सञ्जातमस्येति दुःखितं, तस्मिन् दुःखिते=सञ्जातदुःखेषु प्राणिषु । दयाम्=कृपां—दुःखप्रहरणेच्छालक्षणां करुणाम् । कुरु=विधेहि । कुतः ? एतत् सर्वं तृष्णाछेदनादिकम् । सतां =सज्जनानाम् । चेष्टितं=व्यापारः, आचरणलक्षणं वा अस्ति । पद्येऽस्मिन्नपि शार्दूलविक्रीडितनामकं वृत्तं विद्यते ।

भावार्थः—वैराग्योत्पादनद्वारा तृष्णापाकरणादिकं सर्वं सज्जनानामाचरणं सर्वेषां कल्याणकरं कार्यं विद्यते । सौजन्ययशःकामिभिः पुंभिरेतदवश्यमनुकरणीयम्, अन्यथा पुरुषार्थालाभासम्भवात् दुष्कीर्तिः प्रसरेदिति भावः ।

भाषार्थ—लोभ छोड़ो, क्षमा धारण करो, घमण्ड का त्याग करो, पाप में प्रेम न रखो, सत्य बोलो, सत्पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करो, विद्वानों की सेवा करो, गुरुजनों का आदर करो, शत्रुओं को भी मनाओ, नम्रता दिखलाओ, सुयश का पालन करो और दुःखी प्राणियों पर दया करो, क्योंकि सज्जनों का यही आचरण, कर्तव्य या लक्षण है । अर्थात् सत्पुरुषों का लोकव्यवहार ही ऐसा होता है कि वे सभी प्राणियों पर अनुकम्पा किया करते हैं ।

अथोदारचरितानां सत्पुरुषाणां प्रायो विरलत्वं प्रदर्शयति—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥ ७९ ॥

अन्वयः—मनसि वचसि काये (च) पुण्यपीयूषपूर्णाः उपकारश्रेणिभिः त्रिभुवनं प्रीणयन्तः परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य निजहृदि नित्यं विकसन्तः सन्तः कियन्तः सन्ति ?

व्याख्या—मनसि=चित्ते । वचसि=वचने । काये=शरीरे च । पुण्यपीयूषपूर्णाः—पुण्यमेव=सुकृतमेव, पीयूषममृतमिति पुण्यपीयूषं, तेन पूर्णाः=परिपूर्णा, इति पुण्यपीयूषपूर्णाः=मनोवाक्कायैः सत्कर्माचरणतत्पराः । उपकारश्रेणिभिः—उपकारस्य श्रेणय उपकारश्रेणयः, ताभिः उपकारश्रेणिभिः=हिताचरणपरम्पराभिः । त्रिभुवनं—त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनं=जगत्त्रयं त्रिभुवनस्थं जनम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रीणयन्तः=सन्तोषयन्तः। परगुणपरमाणून्—परेषां गुणाः परगुणाः, परगुणानां परमाणव इति परगुणपरमाणवः, तान् परगुणपरमाणून्=लोकात्यल्पगुणानपि। पर्वतीकृत्य—न पर्वता अपर्वता, अपर्वतान् पर्वतान् कृत्वेति पर्वतीकृत्य=परेषामतिस्वल्पानपि गुणान् महत्तरान् विज्ञाय। निजहृदि=स्वान्तःकरणे, आत्मनो हृदये। नित्यम्=सततम्। विकसन्तः=हर्षं प्राप्नुवन्तः। सन्तः=सज्जनाः। कियन्तः=कतिसंख्याकाः, कतिपये विरला एव। सन्ति=विद्यन्ते। अत्यल्पा दुर्लभा एव सन्तीत्यर्थः। अस्मिन् श्लोके मालिनीनामकमस्ति वृत्तम्।

भावार्थः—मनोवाक्कायकर्मभिः परेषामुपकारं कुर्वन्तः अन्येषामत्यल्पानपि गुणान् अतिबृहद्रूपान् मत्वा प्रसन्नतामभिव्यञ्जयन्ता विरला एव महात्मानः सकललोककल्याणपरायणा दृश्यन्ते, एतादृशसम्पत्तेरसाधारण्यादिति भावः।

भाषार्थ—मन, वाणी और शरीर में पुण्यकर्मरूपी अमृत से परिपूर्ण, अनेक प्रकार के उपकारों से तीनों लोकों को प्रसन्न करने वाले और दूसरों के परमाणु मात्र सूक्ष्म गुणों को पर्वताकार विस्तृत मानकर अपने मन में हमेशा प्रफुल्लित होने वाले सत्पुरुष इस संसार में कितने हैं? अर्थात्—इस विश्व में ऐसे महापुरुष विरले ही होते हैं, जो मनसा, वाचा, कर्मणा एवं शरीर से परोपकाररत हों। इस प्रकार के सन्तों का दर्शन बड़े सौभाग्य से होता है॥ ७९॥

अथागुणानपि स्वाश्रितान् सगुणान् कुर्वन्तो महानुभावा मान्या भवन्तीत्याह—

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः॥ ८०॥

अन्वयः—तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा किम्? यत्र च आश्रिताः तरवः ते तरव एव, (वयंतु) मलयमेव (बहु) मन्यामहे, यदाश्रयेण कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दना स्युः।

व्याख्या—तेन=प्रसिद्धेन। हेमगिरिणा—हेम्नो गिरिरिति हेमगिरिः, तेन हेमगिरिणा=सुवर्णपर्वतेन, सुमेरुणा। रजताद्रिणा=कैलासपर्वतेन वा। किम्=किमस्ति प्रयोजनम्? यत्र च=यत्प्रदेशे च। आश्रिताः=स्थिताः। तरवः=वृक्षाः। ते=पूर्वरूपाः साधारणाः। तरवः=वृक्षा एव तिष्ठन्ति। वयं=विचारकाः। मलयमेव=मलयनामकं पर्वतमेव। मन्यामहे=बहुमान-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दृशा पश्यामः। यदाश्रयेण—यस्याश्रयः यदाश्रयः, तेन यदाश्रयेण=यत्प्रदेशावस्थानसौभाग्येन। कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि=कङ्कोल-निम्ब-कुटजनामका वृक्षा अपि। चन्दनाः=चन्दनवृक्षसदृशाः सुगन्धिनः। स्युः=भवेयुः। भवन्तीति तात्पर्यम्। अत्र पद्ये वसन्ततिलकानामकं वृत्तं वर्तते।

भावार्थः—सुवर्णमयात् सुमेरुपर्वतात्, रजतमयाच्च कैलासपर्वतात् को नाम लोके लाभः? यो हि स्वाश्रितान् वृक्षान् न सविशेषरूपान् विदधाते। तयोर्नाम निरर्थकमेव प्रतिभाति। केवलं मलयाचलस्यैव लोके श्लाघ्यत्वं कार्यं, यो निजाश्रितान् कङ्कोलादीन् अपि सुभगचन्दनसौरभसम्भारसम्भृतान् करोतीति भावः।

भाषार्थ—उस सुवर्णपर्वत सुमेरु तथा रजतपर्वत कैलास से क्या लाभ है? जहाँ लगे हुए पेड़ वैसे के वैसे पेड़ ही रह गये। हम तो उस मलयाचल को ही धन्य मानते हैं, जिसका आश्रय लेने से कङ्कोल, दालचीनी, नीम तथा कुटज पत्थरफूल के वृक्ष भी चन्दन से हो जाते हैं। अर्थात् गुणवान् ही सर्वत्र प्रशंसनीय हैं, जिनकी संगति में आकर दुर्जन भी गुणवान् हो जाते हैं ॥८०॥

अथेदानीं परोपकारस्य धैर्यशीलमूलत्वात् परोपकारपद्धतिवर्णनानन्तरं धैर्यशीलसरणिं वर्णयितुं प्रारब्धं कार्यं पूरयित्वैव विश्रामो विधेय इति दृष्टान्तद्वारा दर्शयति—

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम्।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥ ८१ ॥

अन्वयः— देवाः महार्हैः रत्नैः न तुतुषुः, भीमविषेण भीतिं न भेजिरे, सुधां विना विरामं न प्रययुः। (हि) धीरा निश्चितार्थात् न विरमन्ति।

व्याख्या—देवाः=अमराः समुद्रमन्थनावसरे। महार्हैः—महत् अर्हं येषां तानि महार्हाणि, तैः महार्हैः=क्षीरार्णवस्य सम्बन्धिभिः बहुमूल्यैः। रत्नैः=ततो निर्गतैः कौस्तुभादिमणिभिः, यद्वा उत्कृष्टैरावतादिभिः, कल्पवृक्षादिभिः, श्रेष्ठजातीयवस्तुभिः। न तुतुषुः=न तुष्टिं प्रापुः। भीमविषेण=बिभेत्यस्मादिति भीमम्, भीमं च यद् विषं भीमविषं यद्वा भीमं विषं यस्य तत् भीमविषं, तेन भीमविषेण=भयङ्करेण कालकूटाख्येन गरलेन। भीतिं=भयम्। न भेजिरे=न प्रापुः। किन्तु सुधां विना=अमृतप्राप्तिमन्तरेण। विरामं=स्वकार्यादमृतमन्थनाद् विश्रामम्। न प्रययुः=न लेभिरे। सुधां प्राप्यैव मन्थनकार्यात् ते विरता बभूवुः। हि=युक्तमेव। धीराः=धैर्यवन्तो मनस्विनः। निश्चितार्थात्—निश्चितः अर्थः निश्चितार्थः, तस्मात् निश्चितार्थात्=प्रतिज्ञातार्थात्। न विर-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मन्ति=विरामं न कुर्वन्ति, अपराङ्मुखाः सन्तः प्रतिज्ञातं विषयं पूरयित्वैव विरमन्ति=आफलोदयं प्रयतन्त एवेत्यर्थः। पद्येऽत्रोपजातिनामकमस्ति वृत्तम्।

भावार्थः—अमृतं प्राप्तुकामनया क्षीरसागरं मथितुं प्रवृत्ता देवा बहुमूल्यै-रन्यैः रत्नैरतुष्यन्तो महोल्बणाद्विषादपि भयमलभमाना विरतिं न विदध्युः, अपितु सुधां लब्ध्वैव विरता अभूवन्। अतो धैर्यशीलसम्पन्नानां देवानां युक्तमिदं कार्यमनुकृत्य महान्तो न कदापि प्रतिज्ञातार्थाद् विश्रामं कुर्वन्तीत्यर्थः।

भाषार्थ—देवता लोग समुद्र में से बहुमूल्य रत्नों को पाने पर भी सन्तुष्ट नहीं हुए और भयंकर विष से भी नहीं डरे, वे अमृत पीये बिना समुद्रमन्थन से विरत नहीं हुए। इसी तरह धीर और बुद्धिमान् मनुष्य संकल्पित वस्तु को बिना प्राप्त किए कभी नहीं रुकते। अर्थात् धीर पुरुष अपने निश्चित कार्य को पूरा किये बिना कभी भी विश्राम नहीं करते। वे अपने हाथ में लिए हुए कार्य को पूरा करके ही चैन लेते हैं॥ ८१॥

अथ सुखदुःखे अगणयतो मनस्विनो मानवस्य कार्यप्रकारं प्रदर्शयितुं तच्चे-ष्टितं स्फुटीकरोति—

क्वचित् पृथ्वीशय्यः क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।
क्वचित् कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्॥ ८२॥

अन्वयः—कार्यार्थी मनस्वी (पुरुषः) क्वचित् पृथ्वीशय्यः, अपि च क्वचित् पर्यङ्कशयनः, क्वचित् शाकाहारः, अपि च क्वचित् शाल्योदनरुचिः, क्वचित् कन्थाधारी, अपि च क्वचित् दिव्याम्बरधरः (सन्) दुःखं न गणयति सुखं च न (गणयति)।

व्याख्या—कार्यार्थी—कार्यमर्थयते इति कार्यार्थी=कार्यनिष्पत्त्यभिलाषी, कार्यसाधने प्रवृत्तः। मनस्वी—प्रशस्तं मनो यस्यासौ मनस्वी=स्थिरचित्तो महामनाः। क्वचित्=कुत्रचित्। पृथ्वीशय्यः—पृथ्वी शय्या यस्य स पृथ्वीशय्यः= कठिनतरस्थण्डिलशयनः। अपि च=किञ्च। क्वचित्=कुत्रचित्। पर्यङ्कशयनः —पर्यङ्के=मञ्चे, शयनं=स्वापो, यस्य सः पर्यङ्कशयनः=मृदुलतरशय्याशायी। क्वचित् शाकाहारः—शाकं=भोजनसाधनं पत्रपुष्पादिकम्, आहारो=भोजनं, यस्य सः शाकाहारः=नीरसाहारः। अपि च क्वचित् शाल्योदने=शाल्यन्ने रुचिर्यस्य स शाल्योदनरुचिः=कलमाद्यस्पृहः। अपि च क्वचित् कन्थाधारी—कन्थां=जीर्णशीर्ण-वस्त्रखण्डननिर्मितं प्रावरणविशेषं, धारयतीति कन्थाधारी। अपि च क्वचित्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिव्याम्बरधरः–दिवि भवं दिव्यं, दिव्यमम्बरं धरति परिदधातीति दिव्याम्बरधरः=अलौकिकवस्त्रधरः वा सन् । दुःखम्=पृथ्वीशयनादिना व्यथाम् । सुखम्=पर्यङ्कशय्यादिना शर्म च । न गणयति=नापेक्षते । अस्मिन् श्लोके शिखरिणीनामकं छन्दो वर्तते ।

भावार्थः—दृढतया कार्यसाधने प्रवृत्तः पुमान् समयानुसारं कुसुमकोमले पर्य्यङ्के तृणाङ्कुरपूर्णायां भूमौ वा शयानः, सरसं शाल्यन्नं नीरसं शाकं वा भुञ्जानः, कनकपीताम्बरं जीर्णं शीर्णं च वसनं वा वसानः न सुखी नापि दुःखी भवतीति भावः ।

भाषार्थ—कार्य की सिद्धि चाहने वाला मनस्वी पुरुष कहीं पृथ्वी पर शयन करता है तो कहीं पलंग पर सो लेता है, कहीं साग-पात खाता है तो कहीं धान के भात का भी स्वाद ले लेता है, कहीं गुदड़ी पहनता है तो कहीं अत्यन्त सुन्दर रेशमी वस्त्र भी पहन लेता है । फिर भी वह सुख या दुःख की परवाह नहीं करता अर्थात् मनस्वी व्यक्ति—कार्यसिद्धि के लिए सुख-दुःख की परवाह नहीं करता, वल्कि हमेशा कटिबद्ध रहता है ॥ ८२ ॥

अथ सर्वोत्कृष्टं भूषणं शीलमेवेति सिद्धान्तयितुमुपक्रमते—

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥ ८३ ॥

अन्वयः—ऐश्वर्यस्य सुजनता विभूषणम्, शौर्यस्य वाक्संयमः, ज्ञानस्य उपशमः, श्रुतस्य विनयः, वित्तस्य पात्रे व्ययः, तपसः अक्रोधः, प्रभवितुः क्षमा, धर्मस्य निर्व्याजता (विभूषणम्) सर्वकारणम्, इदं शीलं सर्वेषां परं भूषणम् ।

व्याख्या—ऐश्वर्यस्य—ईश्वरस्य भावः ऐश्वर्यं, तस्य ऐश्वर्यस्य=प्रभुत्वस्य, साम्राज्याधिपत्यस्य । सुजनता—सुजनस्य भावः सुजनता=सौजन्यम् । विभूषणम्=अलङ्कारः । शौर्यस्य=विक्रमस्य विभूषणम् । वाक्संयमः=वाङ्नियमः, वचनस्य नियमनम् । ज्ञानस्य=बोधस्य विभूषणम् । उपशमः=शान्तिः । शान्त्या अनभिज्ञानं व्यर्थमेव । श्रुतस्य=शास्त्रश्रवणस्य विभूषणम् । विनयः=नम्रता, अविनीतस्य श्रुतं दोषायैव कल्पते । वित्तस्य=द्रव्यस्य विभूषणम् । पात्रे=योग्ये पुरुषे । व्ययः=विनियोगः दानम् । तस्यैव सदुपयोगरूपत्वात् । तपसः=तपश्चरणस्य विभूषणम् । अक्रोधः—क्रोधस्याभावः, क्रोधस्य तपसो विघातकत्वात् । प्रभवितुः=निग्रहानुग्रहसमर्थस्य प्रियभूषणम् । क्षमा=सहनशीलता,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपकारसहनम् । तथा सत्येव लोकप्रियतायाः सम्भवात् । धर्मस्य=वेदबोधित-कर्तव्यताविशेषस्य सुकृतस्य विभूषणम् । निर्व्याजता=निश्छलत्वम् । सव्याजस्य धर्मस्य निष्फलत्वात् । किन्तु सर्वकारणमिदम्—सर्वेषां=समस्तानामैश्वर्यादीनामितरेषां वा सकलवस्तूनाम्, कारणम्=निदानभूतम् । इदमेतत् शीलम्=सद्वृत्तं सर्वेषामपि पूर्वोक्तानां सकलानामैश्वर्यादीनामपि परं श्रेष्ठं सुजनतादिभ्य उत्कृष्टं भूषणम् अस्ति । अत्र पद्ये शार्दूलविक्रीडितं नामकमस्ति छन्दः ।

भावार्थः—ऐश्वर्यशौर्यादीनां सौजन्यादेर्विभूषणत्वेऽपि सर्वेषामपि पुंसां शीलं सौजन्याद्यपेक्षयोत्कृष्टं भूषणम् । अत ऐश्वर्यसौजन्याद्यनेकश्रेयःसाधकत्वात् सर्वदा शीलमेवाश्रयणीयमिति भावः ।

भाषार्थ—ऐश्वर्य का आभूषण सौजन्य, शौर्य का वाक्संयम, ज्ञान का शान्ति, शास्त्र का विनय, धन का योग्य सत्पात्र में दान, तप का क्रोधाभाव, सामर्थ्यवान् का क्षमा और धर्म का आभूषण निष्कपटता है, परन्तु सभी का कारण शील ही सबका उत्तम भूषण है अर्थात् शील ही एक ऐसा उत्कृष्ट आभूषण है, जो मनुष्य को अन्य शोभावर्द्धक साधनों से अत्यधिक शोभावान् बनाता है । अतः शील सर्वोत्कृष्ट आभूषण माना जाता है ॥ ८३ ॥

अथ धीरा लोकनिन्दास्तुतिप्राप्ता अपि न्यायमार्गान्न कदापि भ्रश्यन्तीत्याह—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ ८४ ॥

अन्वयः—नीतिनिपुणाः निन्दन्तु यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु वा यथेच्छं गच्छतु, मरणमद्यैव वा अस्तु युगान्तरे वा (अस्तु), धीराः न्याय्यात् पथः पदम् (अपि) न प्रविचलन्ति ।

व्याख्या—नीतिनिपुणाः=नयशास्त्रविशारदाः । निन्दन्तु=कथञ्चिद् दुष्यन्तु । यदि वा=अथवा । स्तुवन्तु=स्तुतिं कुर्वन्तु । लक्ष्मीः=सम्पत्तिः । समाविशतु=समीपमागच्छतु । वा=यद्वा । यथेच्छं=स्वेच्छानुसारम् । गच्छतु=दूरे भवतु । मरणम्=मृत्युः । अद्यैव=अस्मिन्नेव काले वा । अस्तु=भवतु । वा=अथवा । युगान्तरे=अन्यस्मिन् युगे अस्तु । परं धीराः=धैर्यशालिनः पुरुषाः । न्याय्यात्=न्यायोचितात् । पथः=मार्गात् । पदमपि=एकं चरणमपि । न प्रविचलन्ति=न्यायमार्गमनुसरन्त्येव । अत्र श्लोके वसन्ततिलकानामकं वृत्तं वर्तते ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—धीराः पुरुषाः निन्दास्तुत्यादिकं किमप्यनपेक्ष्य कदापि न्यायमार्गात् पराङ्मुखा न भवन्ति, अपि तु तत्परतया सर्वदा न्यायसङ्गतमेव कार्यं कुर्वन्ति। तेषां न्यायमार्गापरित्याग एव परमार्थः, न स्तुत्यादिरिति भावः।

भाषार्थ—नीतिविशारद निन्दा करें अथवा प्रशंसा करें, इच्छानुसार सम्पत्ति अपने पास आवें या अपने पास से चली जाय। आज ही मृत्यु हो जाय या दूसरे युग में हो, परन्तु धीर पुरुष उचित मार्ग से विचलित नहीं होते। अर्थात् धीर पुरुषों की नीतिज्ञ लोग चाहे निन्दा करें या प्रशंसा करें, उससे उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। वे हर अवस्था में अपने आपको सन्तुलित बनाये रहते हैं ॥ ८४ ॥

अथ बन्धमोक्षयोर्हानिवृद्ध्योरपि दैवमेवास्ति कारणमित्याह—

भग्नाशस्य करण्डपिण्डिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा
कृत्वाऽऽखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः।
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा
लोकाः! पश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥ ८५ ॥

अन्वयः—लोकाः! पश्यत, आखुः नक्तं विवरं कृत्वा भग्नाशस्य करण्डपिण्डिततनोः क्षुधा म्लानेन्द्रियस्य भोगिनः मुखे स्वयं निपतितः, असौ तत्पिशितेन तृप्तः (सन्) तेन एव पथा सत्वरं यातः, (अतः) हि दैवम् एव नृणां वृद्धौ क्षये (च) कारणं भवति।

व्याख्या—हे लोकाः=हे मनुष्याः! पश्यत=विलोकयत। आखुः=मूषकः। नक्तम्=रात्रौ। विवरम्=बिलं, छिद्रम्। कृत्वा=विधाय। भग्नाशस्य=भोज्यप्राप्तौ निराशस्य। करण्डपिण्डिततनोः—करण्डे=पेटिकायां, पिण्डिता=पिण्डीकृता, वलयिता, तनुः=शरीरं, यस्य स करण्डपिण्डिततनुः, तस्य करण्डपिण्डिततनोः=आसारप्रसारशून्यतयाऽतिकृच्छ्रदशामापन्नस्य। अतएव क्षुधा=बुभुक्षया। म्लानेन्द्रियस्य—म्लानानि इन्द्रियाणि यस्य सः, तस्य म्लानेन्द्रियस्य=आहारालाभाद्विनष्टेन्द्रियपाटवस्य। भोगिनः—भोगः=फणा, अस्ति अस्येति भोगी, तस्य भोगिनः=सर्पस्य। मुखे=आनने। स्वयं=दैववशात्। निपतितः=प्रविष्टः, करण्डमध्यस्थामिषबुभुक्षया विवरं कृत्वा स्वयं बुभुक्षितकृष्णसर्पमुखप्रवेशेन नष्टः। ततोऽसौ=भोगी। तत्पिशितेन=मूषकमांसेन तृप्तः सन्। तेनैव=मूषकविरचितेनैव। पथा=विवरेण। सत्वरं=शीघ्रम्। यातः=बहिर्निर्गत्य पलायितः। अतः हे जनाः! स्वस्थाः=स्वस्थचित्ताः सन्तः तिष्ठत। कुतः? हि=यतः। दैवमेव=आत्मनः पुरा कृतं कर्मैव शुभाशुभम्। नृणां=मानवानाम्। वृद्धौ क्षये च=उन्नतौ अवनतौ च, सुखे दुःखे च। कारणं=

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हेतुः भवति। अस्मिन् पद्येऽपि पूर्ववत् शार्दूलविक्रीडितनामकमस्ति छन्दः।

भावार्थः—सर्पग्राहिणः पेटिकायां सर्वतोऽवरुद्धस्य कष्टमनुभवतः सर्पस्य मुखे भोजनलाभाशया विवरं विधाय प्रविष्टं मूषकं भक्षयित्वा मूषककृतविवरद्वारैर्वहिर्निर्गतमहिं विलोक्य कस्यचित् कार्यस्य सिद्धेरसिद्धेश्च कारणं दैवमेव मन्तव्यम्। अतो मूषकभोगिनोर्दृष्टान्तेन स्वस्थैर्भाव्यं मानवैर्न तु अप्रयोजकपौरुषालम्बनपरैरिति भावः।

भाषार्थ—जीवन से निराश, पिटारी में दबे देह वाले, भूख से शक्तिहीन, साँप के मुख में रात के समय चूहा अपने आप छेद कर घुस गया तथा साँप उसी चूहे के माँस से तृप्त होकर उसी रास्ते से बाहर निकल गया। अरे मनुष्यो! देखो भाग्य ही मनुष्य की उन्नति और अवनति का कारण होता है। अर्थात् भाग्य के कारण ही कैद हुआ प्राणी मुक्ति पा सकता है तथा स्वतन्त्र वृत्ति वाला व्यक्ति भी आपत्ति में फँस सकता है। अपनी-अपनी उन्नति एवं अवनति का एकमात्र कारण अपने भाग्य को ही समझना चाहिए॥ ८५॥

अथाऽऽलस्यं विहाय सुखोपलब्धये उद्योगं विधेयमावश्यकं प्रतिपादयति—

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कुर्वाणो नावसीदति॥ ८६॥

अन्वयः—हि आलस्यं मनुष्याणां शरीरस्थः महान् रिपुः। उद्यमसमः (अन्यः) बन्धुर्नास्ति यं कुर्वाणः नावसीदति।

व्याख्या—हि=निश्चयेन। आलस्यं=कार्येषु प्रवृत्त्यभावः। मनुष्याणाम्=नराणाम्। शरीरस्थः—शरीरे तिष्ठतीति शरीरस्थः=देहे स्थितः। महान्=विशालः। रिपुः=शत्रुः। अस्ति। उद्यमसमः—उद्यमेन समः उद्यमसमः=उद्योगसदृशः। बन्धुः=स्वीयो बन्धुः। नास्ति=न वर्तते। यम्=उद्योगम्। कुर्वाणः=कुर्वन् मनुष्यः। नावसीदति=कष्टं न प्राप्नोति। पद्येऽनुष्टुप् छन्दोऽस्ति।

भावार्थः—आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरे वर्तमानः कार्यविघातकशत्रुरिव कार्यं करोति। अतस्तं दूरे कृत्वा मित्रमिव कार्यसाधक उद्योगो विधेय इति भावः।

भाषार्थ—आलस्य मनुष्यों के शरीर में रहने वाला महान् शत्रु है। उद्योग के समान कोई मित्र नहीं, जिसे करने पर मनुष्य दुःखी नहीं होता। इस प्रकार आलस्य मनुष्य का अत्यन्त हानिकारक शत्रु तथा उद्यम सहायक बन्धु है। अतः मनुष्य को सदा आलस्य त्यागकर पुरुषार्थ करना चाहिए॥ ८६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ दुःखानन्तरं सुखस्योपलब्धेः सतां न कदाचिदपि भवति मनसि सन्ताप इत्युदाहरण-द्वारा दर्शयति—

छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः ।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न दुःखेषु ॥ ८७ ॥

अन्वयः—छिन्नः अपि तरुः पुनः रोहति, क्षीणः अपि चन्द्रः (पुनः) उपचीयते इति विमृशन्तः सन्तः दुःखेपु न सन्तप्यन्ते ।

व्याख्या—छिन्नः अपि=क्षतः सन्नपि । तरुः=वृक्षः । पुनः=भूयः । रोहति=उद्गच्छति, प्रादुर्भवति । तथा क्षीणः=कृशत्वं गतः अपि । चन्द्रः=चन्द्रमा । पुनः=भूयः । उपचीयते=शुक्लपक्षे वर्द्धते । इति=इत्थम् । विमृशन्तः=विचारयन्तः, पर्यालोचयन्तः । सन्तः=सत्पुरुषाः । दुःखेषु=कष्टेषु । न सन्तप्यन्ते=परितप्ता न भवन्ति । अत्रार्याछन्दो विद्यते ।

भावार्थः—छिन्नस्य वृक्षस्य पुनरपि सञ्जाताङ्कुरपल्लवत्वात्, कृष्णपक्षे दिनक्रमेण कलाह्रासतामुपगतस्य भूयः शुक्लपक्षे च कलाभिर्वृद्धिं प्राप्तस्य चन्द्रमसो दर्शनाच्च शीलसम्पन्नाः महापुरुषा नान्तव्याकुला भवन्ति, किन्तु तरु-चन्द्रदृष्टान्तेनात्मनोऽप्यभिवृद्धिमाशंसन्त एव वसन्तीति भावः ।

भाषार्थ—कटा हुआ वृक्ष भी पुनः उग जाता है, तथा कृष्णपक्ष में घटा हुआ चन्द्रमा भी फिर शुक्लपक्ष में बढ़ जाता है । यह विचार करके सत्पुरुष संसार में दुःख से पीड़ित होते हुए भी दुःखी नहीं होते । इस प्रकार मनुष्य के जीवन में दुःख के बाद सुख अवश्य आता है । अतः मनुष्य को धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए ॥ ८७ ॥

ननु धैर्यशीलयोरपि दैवायत्तत्वात्तन्निरूपणान्तरं सोदाहरणं दैवप्राधान्यं प्रदर्शयति—

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावती वारणः ।
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभिद् भग्नः परैः सङ्गरे
तद् व्यक्तं ननु दैवमेव शरणं धिग् धिग् वृथा पौरुषम् ॥८८॥

अन्वयः—यस्य नेता बृहस्पतिः, प्रहरणं वज्रं, सैनिकाः सुराः, दुर्गं स्वर्गः, अनुग्रहः हरेः, किल वारणः ऐरावतः, इति ऐश्वर्यबलान्वितः अपि बलभित् सङ्गरे परैः भग्नः । तत् व्यक्तं ननु दैवमेव शरणम्, वृथा पौरुषं धिक्-धिक् (अस्ति) ।

व्याख्या—यस्य=बलभिदः, इन्द्रस्य । नेता=नायकः, हितापहितोपदेष्टृत्वेन मार्गदर्शकः । बृहस्पतिः—बृहतां पतिः बृहस्पतिः=देवगुरुः । प्रहरणम्=आयुधम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वज्रम्=कुलिशम् । सैनिकाः=सेनायां समवेतारो योद्धारः । सुराः=देवाः । दुर्गम्=परैरगम्यं सुगुप्तं रक्षास्थानम् । स्वर्गः=नाकः । अनुग्रहः=कृपापरिपालनतात्पर्यम् । हरेः=सकललोकाधीशस्य साक्षाद् भगवतो विष्णोरेव । वारणः=गजः । ऐरावतः=दिग्गजेन्द्रः । इति=एवम् । ऐश्वर्यान्वितः=असाधारणशक्तियुक्तोऽपि । बलभित्=इन्द्रः । सङ्गरे=सङ्ग्रामे, युद्धे । भग्नः=पराजितः । तत्=तस्मात् कारणात् । व्यक्तम्=स्फुटम् । यत् ननु=निश्चयेन । भाग्यमेव शरणम्=रक्षकम् । वृथा=निरर्थकम्, निष्फलम् । पौरुषम्=पुरुषकारम् । धिक्-धिक्=पुनः पुनर्धिक्कारोऽस्तु । अस्मिन् श्लोके शार्दूलविक्रीडितनामकं छन्दो वर्तते ।

भावार्थः—हितापहितोपदेष्टारं मार्गप्रदर्शकं बृहस्पतिं पर्वतपक्षच्छेदनेऽप्यकुण्ठितधारं कुलिशं सैनिकान् बलवत्तरान् देवान् लब्ध्वा स्वर्गदुर्गे स्थितः सकललोकाधीश्वरस्य विष्णोः अनुग्रहभागपि ऐरावतारूढो महेन्द्रो देवासुरसङ्ग्रामेऽसुरैः सह यत् पराभवं प्राप्तवान्, तेन स्फुटमवभासते यत् किल दैवेऽनुकूले सत्येव सदुद्योगः सफलो भवति नान्यथा । अतः पौरुषस्याकिञ्चित्करत्वाद् दैवमेव प्राधान्येनाश्रयणीयमिति भावः ।

भाषार्थ—जिस इन्द्र के मार्ग-प्रदर्शक स्वयं बृहस्पति हैं, वज्र अस्त्र हैं, देवगण सैनिक हैं, स्वर्गलोक किला है, साक्षात् विष्णु का अनुग्रह है एवं ऐरावत हाथी है। ऐसे पराक्रम से सम्पन्न इन्द्र भी देवासुरसंग्राम में असुरों द्वारा पराजित हो गये तो इससे सिद्ध होता है कि भाग्य ही रक्षक है, व्यर्थ के पौरुष को बारम्बार धिक्कार है। अतः पुरुषार्थ से भाग्य बलवान् होता है। तभी तो सभी शक्तियों से सम्पन्न देवराज इन्द्र भी अपने दुर्भाग्य से कभी संग्राम में पराजित हो जाते हैं। इसलिए सबकी आशा छोड़कर एक दैव का ही शरण लेना चाहिए ॥ ८८ ॥

अथ विचारपूर्वकमेव कार्यं विधेयमिति निर्दिशति—

> कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
> तथाऽपि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता ॥ ८९ ॥

अन्वयः—(यद्यपि) पुंसां फलं कर्मायत्तं (तथा) बुद्धिः कर्मानुसारिणी (भवति), तथापि सुधिया सुविचार्य एव कुर्वता भाव्यम् ।

व्याख्या—यद्यपि पुंसाम्=पुरुषाणाम् । फलम्=सुखदुःखादिकम् । कर्मायत्तम्—कर्मणः आत्मना कृतस्य पुण्यपापात्मकस्य कार्यविशेषस्य, आयत्तम्=अधीनम् । तथा बुद्धिः=मतिः । कर्मानुसारिणी=कृतस्य कर्मणोऽनुरूपा भवति ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तथापि=एवं स्थिते सत्यपि। सुधिया=बुधेन। सुविचार्यैव=सुन्दरं विचारं कृत्वैव। कुर्वता=कार्यंकारिणा। भाव्यम्=भवितव्यम्। पद्येऽस्मिन् वृत्तमस्ति अनुष्टुबेव।

भावार्थः—फलस्य बुद्धेश्च कर्माधीनत्वेन तत्कर्मविरुद्धं किमपि कार्यं विधातुमपारयन् मनुष्यः सर्वं सावधानतया विदध्यादिति भावः।

भाषार्थ—यद्यपि मनुष्यों के सुख-दुःख का फल पूर्वकृत कर्म के अधीन है एवं बुद्धि भी कर्म के अनुसार ही होती है, तो भी मनुष्य को भली-भांति विचार करके ही कार्य करना चाहिए, क्योंकि विचारपूर्वक किया हुआ कार्य सुख का कारण बनता है और विना विचारे किया हुआ कार्य दुःखदायी होता है ॥८९॥

विपदो हि भाग्यहीनं पुमांसमनुगच्छन्तीति दैवोपहतस्य तस्य न कुत्रापि भवति सुखप्राप्तिरित्याह—

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्ताडितो मस्तके
वाञ्छन् देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥ ९० ॥

अन्वयः—खल्वाटः दिवसेश्वरस्य किरणैः मस्तके सन्ताडितः सन् अनातपं देशं वाञ्छन् विधिवशात् तालस्य मूलं गतः, तत्र अपि पतता महाफलेन तस्य शिरः सशब्दं यथा स्यात्तथा भग्नम्। प्रायः भाग्यरहितः यत्र गच्छति तत्रैव आपदः यान्ति।

व्याख्या—खल्वाटः=केशविहीनमस्तकः पुरुषः। दिवसेश्वरस्य—दिवसस्येश्वरो दिवसेश्वरः, तस्य दिवसेश्वरस्य=दिनाधिपस्य सूर्यस्य। किरणैः=रश्मिभिः। शिरसि=मूर्ध्नि। सन्ताडितः=आहतः सन्। अनातपम्=सूर्यातपरहितम्। देशम्=प्रदेशं, स्थानम्। वाञ्छन्=इच्छन् अन्विष्यन्। विधिवशात् =भाग्यवशात्। तालस्य=तालवृक्षस्य। मूलम्=अधःप्रदेशम्। गतः=प्राप्तोऽभूत्, अतिष्ठत्। तत्रापि=तस्मिन्नपि प्रदेशे तालमूले। पतता=वृन्ताद् गलता, वृक्षाद् भ्रश्यता। महाफलेन=महत्परिमाणेन गुरुतरेण तत्फलेन। अस्य= खल्वाटस्य। शिरः=मस्तकम्। सशब्दं—पटत् पटदिति शब्देन सहितं यथा स्यात्तथा। भग्नं=विदीर्णम्, विदलितम्। प्रायः=बाहुल्येन। भाग्यरहितः= दैवहतको, भाग्यहीनो, दुर्दैवहीनो मानवः। यत्र=यस्मिन् स्थले। गच्छति= उपतिष्ठते। तत्र=तस्मिन्नेव स्थले। आपदः=आपत्तयः। यान्ति=उपस्थिता भवन्ति। पद्येऽस्मिन्नपि शार्दूलविक्रीडितनामकमस्ति वृत्तम्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—केशविहीनशिरस्कः कश्चन पुमान् दिनकरकिरणतापमनुभूय आतपशून्यं स्थानमन्विष्यन् तालस्याधस्तादतिष्ठत् । तत्र वृन्ताद् गलता गुरुतर-फलेनास्य शिरः पटपटध्वनिना सह विदलितम् । कुत इत्येतदाशङ्कायां वक्तुं शक्यते यत् दैवहतकः यत्र यत्रोपतिष्ठते तत्र तत्राप्यापदोऽप्युपतिष्ठन्ते । अर्थात्—दुर्दैवदोषेण दुःखितान् मानवान् विपत्तयोऽपि भूयो भूयः पीडयन्ति ।

तदेतन्मशकभयादेकं ग्रामं विहाय ग्रामान्तरं गच्छतः पुंसोऽरण्ये व्याघ्रग्रह-णात् प्रयाणमभूत् । दैवेऽनुकूले किं नाम न शुभाय प्रवर्तते, प्रतिकूलेन दैवेन तु सर्वं विश्लिथायते । अतो भाग्यस्यानुकूल्य-प्रातिकूल्योरेव प्राणिनां शुभाशुभ-फलप्राप्तिर्जायते इति भावः ।

भाषार्थ—शिर पर पड़ने वाले किरणों से परेशान होकर गंजा धूप-रहित छायादार जगह ढूँढ़ता हुआ संयोग से ताड़ के नीचे आ पहुँचा । वहाँ एक बड़े फल के गिरने से उसका सिर आवाज के साथ फट गया । प्रायः देखा जाता है कि जहाँ भाग्यहीन जाता है, वहीं पर आपत्तियाँ भी उपस्थित हो जाती हैं । अतः सिद्ध होता है कि भाग्य के बिना मनुष्य को कहीं भी सुख नहीं मिलता ।। ९० ।।

इतोऽपि दैवस्य बलत्वं प्रतिपादयन्नात्मनो निश्चयं प्रदर्शयति—

रविनिशाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो ! बलवानिति मे मतिः ।। ९१ ।।

अन्वयः – रविनिशाकरयोः ग्रहपीडनं, गजभुजङ्गमयोः अपि बन्धनं मतिमतां च दरिद्रतां विलोक्य, अहो ! विधिः बलवान् इति मे मतिः (भवति) ।

व्याख्या—रविनिशाकरयोः—रविश्च निशाकरश्चेति रविनिशाकरौ, तयोः रविनिशाकरयोः=शशिदिवाकरयोः, सूर्यचन्द्रमसोः । ग्रहपीडनं—ग्रहेण=राहुणा, पीडनमिति ग्रहपीडनम्=राहुग्रसनम् । गजभुजङ्गमयोः—गजश्च भुजङ्गमश्च गजभुजङ्गमौ, तयोः गजभुजङ्गमयोः=हस्तिसर्पयोः अपि । बन्धनं=नियमनम् । मतिमतां=बुद्धिमतां च । दरिद्रतां—दरिद्रस्य भावः दरिद्रता, तां दरिद्रताम्=निर्धनत्वम् । विलोक्य=दृष्ट्वा । अहो !=आश्चर्यम् ! विधिः=भाग्यम् । बलवान्=शक्तिशाली, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः । इति=एवंरूपा । मे=मम भर्तृहरेः । मतिः=बुद्धिः, मननं निश्चयो वा भवति । पद्येऽस्मिन् द्रुतविलम्बितं नाम छन्दो वर्तते ।

भावार्थः—ग्रहेषु अतिप्रसिद्धयोः जगत्प्रकाशकयोः धर्माधर्मसाक्षिणोः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकललोकाराध्ययोश्च शशिदिवाकरयोः राहुग्रसनम्, अरण्यानीसञ्चारिणां सान्निध्यमात्रेणैव विमर्दनशीलानां मत्तेभानां वाल्मीककुहरवर्तिनां विषाग्निरोप-भीषणतया समीपे गन्तुमशक्यानां वा सर्पाणां कूटगर्तमणिमन्त्रौषधजालादिभिः निरोधनम्, तत्त्वार्थनिर्णयसमर्थानां सुमेधसां विदुषामकिञ्चनत्वमालोक्य दैवस्य सर्वतो बलवत्त्वं निश्चीयते। एवञ्चाघटनापटीयसा विधिना को वा कीदृगवस्था-पन्नो न क्रियते इति भावः।

भाषार्थ—सूर्य और चन्द्रमा का राहु द्वारा पीड़ित होना, हाथी और साँपों का बन्धन, बुद्धिमानों की दरिद्रता देखकर यही निश्चय होता है कि भाग्य बड़ा ही बलवान् है। इस प्रकार सबका कारण प्रारब्ध ही कहा जा सकता है॥९१॥

अथानुचितं कुर्वतो विधेरनभिज्ञतामापादयति—

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चेदहह! कष्टमपण्डितता विधेः॥ ९२॥

अन्वयः—(विधिः) अशेषगुणाकरं भुवः अलङ्करणं पुरुषरत्नं सृजति तावत् तदपि तत् क्षणभङ्गि चेत् करोति (तर्हि) अहह! विधेः अपण्डितता (इदम्) कष्टम्।

व्याख्या—ब्रह्मा अशेषगुणाकरम्–अशेषाणां गुणानामाकरमशेषगुणाकरस्तम् अशेषगुणाकरम्=सकलसद्गुणनिधिम्। अतः भुवः=वसुधायाः। अलङ्करणं= मण्डनम्। पुरुषरत्नं—पुरुषेषु रत्नं पुरुषरत्नम्, तत् पुरुषरत्नम्=नरश्रेष्ठम्। सृजति=उत्पादयति। तावत् तदपि=तथापि, पुरुषरत्नमपि। तत्क्षणभङ्गि =तस्मिन्नेव क्षणे नाशशीलम्। यद्वा तत् क्षणेन=क्षणमात्रेण, भङ्गि=नश्वरम्। करोति। चेत्=यदि विधत्ते। विधेः=ब्रह्मणः। अपण्डितता=मौढ्यं, मूर्खत्वम्। अहह!=खेदे! कष्टं=कष्टकरम्। अत्रापि द्रुतविलम्बितमेव छन्दः।

भावार्थः—सकलसद्गुणसनाथं नरपुङ्गवं निर्माय तदल्पकालावस्थायित्वं ब्रह्मणो विधानमतिकृच्छ्रकरं मौढ्यं च प्रतिभाति। प्रायशो विशिष्टपुरुषरत्नस्य क्षणिकत्वेनैव निर्माणादपण्डित एव विधिरिति भावः।

भाषार्थ—ओह! यह बड़े दुःख की बात है, यह ब्रह्मा की कैसी भूल है। पहले तो वह सर्वगुणसम्पन्न पृथ्वी के भूषण नररत्न की रचना करता है और फिर उसी को क्षणभङ्गुर बना देता है। यदि उसको नरश्रेष्ठ का निर्माण करना ही है तो उसे चिरजीवी बना देता, अन्यथा उसका सारा प्रयास व्यर्थ ही चला जाता है और इससे उसकी अदूरदर्शिता भी व्यक्त हो जाती है॥९२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ जन्मकाले ब्रह्मणा ललाटे लिखितं कथमपि अन्यथा भवितुं नार्हतीत्युदाहरण-द्वारा प्रदर्शयति—

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किम् ?
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ?
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम् ?
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ? ॥ ८३ ॥

अन्वयः—यदा करीरविटपे पत्रं नैव (भवति तर्हि अयं) वसन्तस्य दोषः किम् ? यदि उलूको दिवा अपि न अवलोकते (तर्हि) सूर्यस्य दूषणं किम् ? यदि चातकमुखे धाराः नैव पतन्ति (तर्हि) मेघस्य दूषणं किम् ? पूर्वं विधिना यत् ललाटलिखितं तत् मार्जितुं कः क्षमः ?

व्याख्या—यदा करीरविटपे—करीराख्यवृक्षस्य विटपे=शाखायाम् । पत्रम् =पर्णम् । नैव=न कदापि भवति । तर्हि अयं वसन्तस्य=वसन्तर्तोः, मधुमासस्य । दोषः=अपराधः किम् ? नास्तीत्यर्थः । यदि=चेत् । उलूकः= दिवान्धपक्षी । दिवाऽपि=दिनेऽपि । न अवलोकते=न पश्यति । तर्हि इदं सूर्यस्य=रवेः । दूषणम्=दोषः किम् ? न किमपीत्यर्थः । यदि चातकमुखे= सारङ्गपक्षिवदने । धाराः=मेघमुक्ता जलधाराः । नैव पतन्ति=निश्चितरूपेण न पतन्ति । तर्हि मेघस्य=जलदस्य । दूषणं=दोषः किम् ? नास्त्येवेत्यर्थः । युक्तमेवैतत् । विधिना=विधात्रा । पूर्वम् =जन्मकाले । यत् ललाटलिखितं —ललाटे लिखितं ललाटलिखितम्=भालेऽक्षररूपेण विन्यस्तम् । तत् मार्जितुम् =प्रोञ्छितुम् । कः=को नाम पुरुषः । क्षमः=समर्थः ? न कोऽपीत्यर्थः । पद्येऽस्मिन् शार्दूलविक्रीडितनामकमस्ति वृत्तम् ।

भावार्थः—जन्मकाले विधात्रा यस्य भाले यदङ्कितं वर्तते, न केनापि तदन्यथाकर्तुं शक्यते । पत्र-पुष्प-पल्लवादिभिः समृद्धे वसन्तसमये करीरनामकस्य वृक्षस्य शाखासु यदि पत्रं नोत्पद्यते तर्हि तत्र न वसन्तर्तोः दोषः । यदि दिनेऽपि उलूको नावलोकयति तत्र नास्ति सूर्यस्य दोषः । यदि वर्षायां चातकमुखे न निपतति जलबिन्दुस्तर्हि जलधरस्य नास्ति दोषलेशः । अर्थात् पूर्वोक्तं सर्वं विलोक्य वसन्त-सूर्य-मेघानां नास्ति कश्चन दोष इति कल्प्यत इति भावः ।

भाषार्थ—यदि करील के वृक्ष में पत्ता नहीं लगता तो इसमें वसन्त का क्या दोष है ? यदि उल्लू दिन में भी नहीं देख पाता तो इसमें सूर्य का क्या दोष है ? इसी प्रकार यदि पपीहे के मुख में वर्षा की जलधारा नहीं गिरती तो इसमें बादल का क्या कसूर है ? ब्रह्मा ने जन्म के समय जिसके ललाट में जो लिख

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिया है. उसे मिटाने में कौन समर्थ हो सकता है ? अर्थात् भाग्यरेखा को कोई नहीं मिटा सकता है। विधाता का लिखा होकर ही रहता है। भाग्य से ही मनुष्य को सुख या दुःख प्राप्त होता है। अपने दुःखों के लिए हमें दूसरों को दोषी नहीं ठहराना चाहिए ॥ ९३ ॥

अथ कर्मणो महिमानं दर्शयन् क्रमेण नमस्कारमाचरति —

नमस्यामो देवान्नु हतविधेस्तेऽपि वशगा
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः।
फलं कर्मायत्तं यदि किममरैः किञ्च विधिना ?
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥ ९४ ॥

अन्वयः—(वयम्) देवान् नमस्यामः (किन्तु ननु) ते अपि हतविधेः वशगाः (सन्ति, अतः) विधिः वन्द्यः, किन्तु सः अपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः (अस्ति तथा च) यदि फलं कर्मायत्तं (तर्हि) अमरैः किम् ? विधिना किम् ? तत् कर्मभ्यः नमः (अस्तु), विधिः अपि येभ्यः न प्रभवति।

व्याख्या— वयम् देवान्=इन्द्रादीन् सुरान्। नमस्यामः=अभिवादयामः। किन्तु ननु=निश्चयेन। ते=देवा अपि। हतविधेः—हतो यो विधिरिति हतविधिः, तस्य हतविधेः=नीचस्य ब्रह्मणो दैवस्य वा। वशगाः—वशं गच्छन्तीति वशगाः=वशङ्गता नियम्या अधीनाः सन्ति। अतो हेतो विधिः=ब्रह्मा। वन्द्यः= नमस्कार्यः। किन्तु स अपि=विधिरपि। प्रतिनियतकर्मैकफलदः—प्रतिनियतं कर्मणां तदेकफलमिति प्रतिनियतकर्मैकफलं, तद्ददातीति प्रतिनियतकर्मैकफलदः= शुभाशुभकर्मानुसारिफलदाता, न तु तदतिरिक्तफलप्रदानसमर्थः अस्ति। तथा च यदि=चेत्। फलम्=सिद्धिः। कर्मायत्तम्=कर्माधीनम्। स्वकृतकर्मानुसारि तर्हि अमरैः=देवैः। किम्=किं प्रयोजनम् ? विधिना=ब्रह्मणा च। किम्=किं प्रयोजनम् ? कर्मविरुद्धफलदानासामर्थ्यात् न किमपि प्रयोजनम्। तत्=तस्मात् कारणात्। कर्मभ्यः=कार्यविशेषेभ्यः पुरुषप्रयत्नेभ्यः। नमः=नमस्कारोऽस्तु। विधिरपि=ब्रह्मापि। येभ्यः=कर्मभ्यः। न प्रभवति=न समर्थो भवति। कर्मणः पुरः विधेरपि शक्तिः कुण्ठिता भवतीत्यर्थः। पद्येऽस्मिन् शिखरिणीनामकमस्ति वृत्तम्।

भावार्थः—सर्वसमर्थेष्वपि देवेषु यस्य विधेरखण्डितं स्वामित्वं विद्यते स नो वन्दनीयः, यतो हि स नूनं तत्तत्कर्मानुसारमेव फलं वितरति, न तदतिरिक्तं फलं दातुं स समर्थः। अतो हि देवान् ब्रह्माणञ्चोपेक्ष्य कर्मैव नमस्कार्यः, यतो हि सोऽपि तदधीना एव वर्तन्ते। अतः कर्मणः पुरः ब्रह्मणोऽपि शक्तिः कुण्ठिता भवति।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विधिर्हि न कर्मनियमनसमर्थो भवितुमर्हति, नियमस्य नियामकत्वासम्भवा-दिति भावः।

भाषार्थ—हम देवताओं को नमस्कार करते हैं, पर वे भी तो दुष्ट विधि के वश में हैं। अच्छा तो उस विधि की वन्दना करनी चाहिए, पर वह भी तो निश्चित कर्म का ही फल देता है। इसलिए यदि फल कर्म के अधीन है, तब देव और विधि से क्या प्रयोजन है? उस कर्म को ही नमस्कार है, जिसके प्रतिकूल विधाता का भी वश नहीं चलता। अतः कर्म की महिमा महान् है। उसका स्थान देवताओं तथा विधि से भी बढ़कर है ॥ ९४ ॥

अथ भूयः कर्मणो महिमानं वर्णयन् उदाहरणद्वारा स्पष्टयति—

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥ ९५ ॥

अन्वयः—येन ब्रह्मा ब्रह्माण्डभाण्डोदरे कुलालवत् नियमितः, येन विष्णुः दशावतारगहने महासङ्कटे क्षिप्तः, येन रुद्रः कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः, (येन नियमितः) सूर्यः नित्यमेव गगने भ्राम्यति, तस्मै कर्मणे नमः (अस्तु)।

व्याख्या—येन=कर्मणा। ब्रह्मा=सृष्टिकर्ता विधाता। ब्रह्माण्डभाण्डोदरे—ब्रह्माण्डं=सकलं जगदेव, भाण्डं=पात्रमिति ब्रह्माण्डभाण्डम्, तस्योदरे=कुक्षौ, गर्भे। कुलालवत्—कुलालेन=कुम्भकारेण, तुल्यं समानमिति कुलालवत्। नियमितः=नियोजितः। येन विष्णुः=पुराणपुरुषः नारायणः कुक्षिस्थाखिलभुवनः। दशावतारगहने—दशावताराः=मत्स्यकूर्मवराहाद्यवताराः, एव गहनं=महारण्यं, तस्मिन् दशावतारगहने। क्षिप्तः=प्रवर्तितः। येन=कर्मणा। रुद्रः—रोदयति प्रलये इति रुद्रः=मृत्युञ्जयोऽपि। कपालपाणिपुटके—कपालमेव, पाणिपुटकं=करस्थभिक्षापात्रमिति कपालपाणिपुटकं, तस्मिन् कपालपाणिपुटके। भिक्षाटनं कारितः—भिक्षाप्राप्त्यर्थमटनं=भ्रमणं सेवते, कपालस्थं भिक्षान्नं भुङ्क्ते। येन सूर्यः=ग्रहनायकः सकललोकप्रकाशकः। नित्यमेव=अश्रान्तमेव। गगने=आकाशे। भ्राम्यति=भ्रमणं करोति। तस्मै=प्रसिद्धाय महामहिमशालिने कर्मणे। नमः=प्रणामः अस्तु। अस्मिन् श्लोके शार्दूलविक्रीडितं नाम वृत्तं विद्यते।

भावार्थः—कर्मणोऽपूर्वं महत्त्वं विद्यते। तथाहि कर्मैव ब्रह्माणं जगतो निर्माणे, नारायणमतिकष्टकरे कार्ये दशावतारधारणे, रुद्रं कपालपात्रे भिक्षा-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चरणे, सकललोकप्रकाशकं सूर्यं पृथ्वीपरिक्रमायां प्रवर्तितवान् । अतः सर्वेभ्यो बलवत्तरं ब्रह्मादिनियामकं कर्मैव नमस्कार्यम् ।

भावार्थ—जिन कर्म ने ब्रह्मा को कुम्हार की तरह जगत् की रचना में लगा दिया है। विष्णु को अति दुःखद दशावतार धारण करने की कठिनाई में डाल दिया है। जिसके मारे शङ्करजी हाथ में खप्पर लेकर भीख माँगते फिरते हैं और सूर्य प्रतिदिन आकाश में घूमा करते हैं, उस कर्म को नमस्कार है। अर्थात् जिस कर्म के प्रवाह से ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सूर्य भी नहीं बच सके, उसके आगे साधारण प्राणी की क्या शक्ति है? अतः ऐसे बलशाली कर्म को नमस्कार करने में ही मनुष्य का कल्याण है ॥ ९५ ॥

अथ समयानुसारं पूर्वकृतं सुकृतमेव फलं दातुं प्रभवतीत्याह—

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं विद्याऽपि नैव न च यत्नकृताऽपि सेवा ।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥९६॥

अन्वयः—आकृतिः नैव फलति, कुलं नैव फलति, शीलं न, विद्यापि न, यत्नकृतापि सेवा न फलति, किन्तु पूर्वतपसा सञ्चितानि पुरुषस्य भाग्यानि खलु यथा एव वृक्षाः काले फलन्ति ।

व्याख्या—आकृतिः=आकारः, रूपसम्पत्तिः, सुन्दररूपम् । नैव फलति=न फलं निष्पादयति । कुलम्=निर्मलो वंश, नैव फलं जनयति । शीलम्=सदाचरणं, सत्स्वभावो वा नैव फलति, नैव फलं प्रसूते । विद्याऽपि=वेदशास्त्रादिज्ञानमपि नैव फलति । यत्नकृता-यत्नेन कृता यत्नकृता-प्रयत्नानुष्ठिता । सेवा=राजादि-परिचर्याऽपि च न फलति । किन्तु पूर्वतपसा—पूर्वं=पुरा कृतं, यत्तपः=सुकृतं, तेन पूर्वतपसा=पूर्वकृतसुकृतेन । सञ्चितानि=सम्पादितानि । पुरुषस्य सम्बन्धीनि भाग्यानि अदृष्टविशेषा एव यथा वृक्षाः रसालादितरव इव । काले=समये, परिपाकदशायाम् । फलन्ति=फलं प्रसुवते । खलु=निश्चयेन । अस्मिन् श्लोके वसन्ततिलकानामकमस्ति छन्दः ।

भावार्थः—पुरुषस्य रूपकुलशीलविद्याराजसेवादिकं न जगति सम्मानादिकं जनयति, किन्तु केवलं पूर्वकृतं सुकृतमेव समये रसालादिवृक्ष इव स्वाभिलषितं मनोरथं सम्पादयितुं प्रभवति । तस्मात् पूर्वकृततपोजनितभाग्यमन्तरेण लोके फलजनकमन्यन्न किञ्चिदप्यस्ति । अतो नरैः सुकृतैरेवाभीप्सितं साधयितुं प्रयत्नो विधेय इति भावः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भाषार्थ—मनुष्य का न तो सुन्दर रूप फल देता है, न कुलीनता, न सत्स्वभाव, न विद्या, तथा न यत्नपूर्वक परिश्रम के साथ की गयी राजसेवा, प्रत्युत पूर्वजन्म में किये गये तप के द्वारा अर्जित प्रारब्ध ही वृक्ष के समान समय पर फल देता है। वस्तुतः मनुष्य का भाग्य ही समय पाकर फल देता है और इसके पूर्वकृत ही काम में आते हैं ॥ ९६ ॥

अथ पुरातनं पुण्यमेव मानवानां सङ्कटकाले संरक्षकं भवतीत्याह—

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ ९७ ॥

अन्वयः—पुराकृतानि पुण्यानि वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति।

व्याख्या—पुरा=पूर्वम्, कृतानि=सम्पादितानि। पुण्यानि=सत्कर्माणि। वने=हिंस्रकजन्तुप्रचुरे महारण्ये। रणे=सर्वतः शस्त्रसम्पाते, महासम्प्रहारे वा युद्धे। शत्रुजलाग्निमध्ये—शत्रवश्च जलानि च अग्नयश्चेति शत्रुजलाग्नयः, तेषां मध्यमिति शत्रुजलाग्निमध्यं, तस्मिन् शत्रुजलाग्निमध्ये=शत्रूणामुपद्रवकारिणाममित्राणां रिपूणां जलानां=निमज्जनहेतुभूतानां नदीप्रस्रवणादितोयानाम्, अग्नीनां=दाहकारिणां दावानलादीनां च मध्येऽभ्यन्तरे। महार्णवे—महांश्चासौ अर्णवः महार्णवः, तस्मिन् महार्णवे=अगाधजले भीषणाकारे महति समुद्रे। पर्वतमस्तके—पर्वतानां मस्तकं पर्वतमस्तकं, तस्मिन् पर्वतमस्तके=अभ्रङ्कषगिरिशिखरे वा। सुप्तम्=सुषुप्त्यवस्थापन्नं निद्रितम्। प्रमत्तम्=जाग्रदवस्थायामप्यनवहितमसावधानम्। विषमस्थितं—विषमे=निम्नोन्नतस्थले विपत्तौ वा, स्थितं=वर्तमानमतिसङ्कटस्थं पुरुषं वा। रक्षन्ति=पालयन्ति, तत्साहाय्यं कुर्वन्तीत्यर्थः। पद्येऽत्रोपजातिनामकवृत्तम्।

भावार्थः—इह लोके पुरुषाणां प्राग्भवीयसुकृतैर्विना न महाभीषणेष्वपि स्थलेषु जीवनसंरक्षणं सम्भवति। पुराकृतसुकृतवज्रकवचाभिगुप्तसकलमर्मस्थानस्य धर्मवीरस्य पुरुषस्य कुत्रापि भवितुमर्हति क्षतिरिति भावः।

भाषार्थ—पूर्वजन्मों में किये गये पुण्य ही मनुष्य को बड़े भयङ्कर जङ्गल में, रणाङ्गण में, शत्रु, जल एवं अग्नि के बीच, महासमुद्र में, पर्वत की चोटी पर, सुप्तावस्था में, असावधानी की हालत में और विपत्तिग्रस्त होने पर रक्षा करते हैं। अगर मनुष्यों का कोई सहायक है तो वह उसका पहले जन्म में सञ्चित शुभ कर्म ही है ॥ ९७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ पूर्वं सकलनियामकत्वकथनेनाभिवादनीयत्वप्रसाधनान् प्रशस्य सम्प्रति बहुश्रेयो हेतुत्वात् सत्कर्मणः उपादेयतां दर्शयति—

या साधूंश्च खलान् करोति विदुषो मूर्खान् हितान् द्वेषिणः
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात्।
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितं
हे साधो ! व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः ॥ ८८ ॥

अन्वयः—या खलान्, साधून्, मूर्खान्, विदुषः, द्वेषिणः हितान् करोति। परोक्षं प्रत्यक्षं हालाहलं तत्क्षणात् अमृतं कुरुते। हे साधो ! वाञ्छितं फलं भोक्तुं तां भगवतीं सत्क्रियाम् आराधय। व्यसनैः विपुलेषु गुणेषु वृथा आस्थां मा कृथाः।

व्याख्या—या=सत्क्रिया। खलान्=दुर्जनान् अपि। साधून्=सज्जनान्। करोति=विदधाति। मूर्खान्=अज्ञान् अपि। विदुषः=ज्ञानसम्पन्नान् पण्डितान् करोति। द्वेषिणः=हितस्य विरोधं विदधतो वैरिणः अपि। हितान्=हितकरान् सुहृदः करोति। परोक्षं--अक्ष्णः परं परोक्षम्=अतीन्द्रियमपि। प्रत्यक्षम्—प्रतिगतमक्षं प्रत्यक्षं=इन्द्रियगोचरम्। कुरुते=करोति। तथा हालाहलं=उल्बणं विषमपि। तत्क्षणात्=झटिति, सद्य एव वा। अमृतं=पीयूषं कुरुते। तत्र तादृक् सामर्थ्यसम्भवात्। अतः हे साधो !–साध्नोति परकार्यमिति साधुः, तत्सम्बुद्धौ हे साधो !=अरे सज्जन ! वाञ्छितम्=अभिलषितमिष्टम्। फलम्=कार्यस्य सिद्धिम्। भोक्तुम्=उपभोक्तुमासादयितुं वा इच्छसि चेत् तर्हि। ताम्=पूर्वोक्तगुणशालिनीम्। भगवतीम्=ऐश्वर्यादिगुणसम्पन्नाम्। सत्क्रियाम्—सती क्रिया यस्याः सा सत्क्रिया, तां सत्क्रियाम्=शोभनं कर्म। आराधय=सेवस्व, सर्वदानुतिष्ठ। तस्या एवाशेषफलदायकत्वात्। किन्तु व्यसनैः=भ्रंशैः। विपुलेषु=विस्तृतेषु आपद्भूयिष्ठेषु। गुणेषु=शब्दादिविषयेषु। वृथा=व्यर्थम्। आस्थाम्=आसक्तिम्, यत्नम्। मा कृथाः=मा कार्षीः। तस्याः क्लेशैकफलदायकत्वात्। अस्मिन् पद्ये शार्दूलविक्रीडितं नामो छन्दो विद्यते।

भावार्थः—खलादीनां साधुत्वकरणकथनात् निरर्थकमासक्तिपूर्वकं गुणार्जनप्रयासं परित्यज्य मानवैर्मनोऽभीष्टफलप्राप्तिकामनया सदा सत्कर्मैवानुष्ठेयमिति भावः।

भाषार्थ—हे सज्जन ! यदि वाञ्छित फल भोगना चाहते हो तो उस ऐश्वर्यशाली सत्कर्म का अनुष्ठान करो, जो दुर्जनों को सज्जन, मूर्खों को विद्वान्, शत्रुओं को हितैषी, परोक्ष को प्रत्यक्ष, तथा विष को तत्काल अमृत बना देता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। अतः हर प्रकार के दुःखों से व्याप्त अनेक गुणों के अर्जन में व्यर्थ प्रयास न करो। अर्थात् अभिलषित फल भोगने के निमित्त मनुष्य को सर्वसमर्थ सुकृत, पुण्य कार्य का ही आचरण करना चाहिए ।। ९८ ।।

अथ सकलं कर्म परिणामविमर्शपूर्वकमेवानुष्ठेयमिति तेषामारम्भणप्रकारं प्रदर्शयति—

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ।। ९९ ।।

अन्वयः—गुणवत् अगुणवत् वा कार्यजातं कुर्वता पण्डितेन परिणतिः यत्नतः अवधार्या। हि अतिरभसकृतानां कर्मणां शल्यतुल्यः विपाकः आविपत्तेः हृदयदाही भवति।

व्याख्या—गुणवत्—गुणाः सन्ति अस्मिन्निति गुणवत्=गुणयुक्तम्। अगुणवत्—न गुणवत् अगुणवत्=गुणरहितं वा, मुख्यमसाधारणं वा। कार्यजातम्= कर्मसमूहं, बहुविधं कर्म वा। कुर्वता=अनुतिष्ठता, आचरता। पण्डितेन—सत्यासत्यविवेकिनी बुद्धिः पण्डा, पण्डा सञ्जाता अस्येति पण्डितः, तेन पण्डितेन= परिज्ञात्रा बुद्धिमता। परिणतिः=परिपाकावस्था, उत्तमोऽधमो वा तस्य परिणामः। यत्नतः=अतियत्नेन सावधानतया। अवधार्या=विचारणीया, अनुसन्धेया। अतिरभसकृतानाम्—अतिरभसेन=भूयसा वेगेन, कृतानामनुष्ठितानाम्, सहसाऽनुष्ठितानाम्। कर्मणाम्=कार्याणाम्। विपाकः=परिणामः, फलम्। आविपत्तेः=निष्पत्तिपर्यन्तम्, आमरणं वा शल्यप्रायः दुःसहः। हृदयदाही— हृदयं दग्धुं शीलमस्येति हृदयदाही=मनःसन्तापातिशयकारी। भवति= जायते। अस्मिन् पद्ये मालिनीनामकं वृत्तं विद्यते।

भावार्थः—मुख्यं साधारणं वा कार्यजातं प्रयत्नत आरम्भात् परिणतिपर्यन्तं प्रतीक्ष्यम्। अन्यथाकरणेऽनर्थसम्भावनया मरणपर्यन्तं तद्विपाको दुःखदायी भवति। सत्वरमनुष्ठितकर्मणां फलं सन्देहात्तन्निष्पत्ति यावत् शल्यवत् मनः परितापयति। अतो विवेकिनां सावधानतयैव कर्मानुष्ठेयमिति भावः।

भावार्थ—भला या बुरा काम करने से पहले विद्वान् पुरुष को उसका परिणाम भली-भाँति समझ लेना चाहिए, क्योंकि अत्यन्त शीघ्रता में किए गये कर्मों का परिणाम आजीवन काँटे के समान जलाने वाला होता है। अतः कैसा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भी कार्य क्यों न हो, पहले उसके गुण एवं अवगुण का विचार करके ही उसे आरम्भ करना चाहिए। अन्यथा असफलता मिलने पर मनुष्य को अत्यन्त कष्ट होता है॥ ९९॥

अथ सत्कर्मकरणाद् विरतिरस्ति अज्ञातासूचिका। अतः सत्कर्माननुष्ठातुः पुंसो दुर्मेधस्कतां साधयति—

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति तिलकणांश्चन्दनैरिन्धनौघैः
सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः।
कृत्वा कर्पूरखण्डान् वृत्तिमिह कुरुते कोद्रवाणां समन्तात्
प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्तपो मन्दभाग्यः॥ १००॥

अन्वयः—यः मन्दभाग्यः मनुजः इमां कर्मभूमिं प्राप्य तपः न चरति, (सः) मन्दभाग्यः वैदूर्यमय्यां भूमौ स्थाल्यां चन्दनैः इन्धनैः तिलकणान् पचति। अर्कमूलस्य हेतोः सौवर्णैः लाङ्गलाग्रैः वसुधां विलिखति, कर्पूरखण्डान् छित्वा समन्तात् कोद्रवाणां वृतिं कुरुते।

व्याख्या—यः मन्दभाग्यः—मन्दं=कार्याक्षमं, भाग्यं=दैवं, यस्यासौ मन्दभाग्यः=निर्भाग्यः। मनुजः। इमां=प्रत्यक्षं दृश्यमानाम्। कर्मभूमिम्—कर्मणां भूमिः कर्मभूमिः, तां कर्मभूमिम्=कर्माचरणयोग्यां भरतखण्डात्मिकां भूमिं, कर्मक्षेत्रं मर्त्यलोकम्। प्राप्य=लब्ध्वा। तपः=पुण्यम्। न चरति=न करोति। सः=मनुजः। इह=अस्मिन् लोके। विदूरात् प्रभवति वैदूर्यं, वैदूर्यस्य विकारो वैदूर्यमयी, तस्यां वैदूर्यमय्यां=वैदूर्यमणिनिर्मितायाम्। स्थाल्यां=स्थालीपात्रे। चन्दनैः=चन्दनवृक्षसम्बन्धिभिः। इन्धनैः=श्रीखण्डैः, इन्धनौघैः=काष्ठसमूहैः। तिलकणान्—तिलस्य=तिलनामकस्य वस्तुनः, कणाः—अंशा इति तिलकणाः, तान् तिलकणान्=तिलान्। पचति=पक्वान् करोति, विक्लेदयति। अर्कमूलस्य—अर्को=मन्दारः, तस्य मूलं=मूलभागः, तस्य हेतोः=कारणात्, अर्कमूलस्य हेतोः मन्दारमूलार्थम्। सौवर्णैः—सुवर्णस्येमानि सौवर्णानि, तैः सौवर्णैः=सुवर्णनिर्मितैः। लाङ्गलाग्रैः=हलस्याग्रभागैः। वसुधां=पृथिवीम्। विलिखति=कर्षति। कर्पूरखण्डान् – कर्पूरस्य=घनसारस्य, खण्डानि=शकलानि, इति कर्पूरखण्डाः, तान् कर्पूरखण्डान्=घनसारशकलानि। कृत्वा=विधाय। समन्तात्=सर्वतः। कोद्रवाणाम्=कोरदूषाणामन्नानाम्। वृतिम्=आवरणम्, आवेष्टकम्। कुरुते=विदधाति। अत्र पद्ये स्रग्धरानामकं वृत्तं वर्तते।

भावार्थः—भारतवर्षे समाचरितमल्पमपि सत्कर्माधिकं फलं ददातीति यो मूढो मानवः व्रतोपवासादि सत्कर्म नानुतिष्ठति स महान् मन्दभाग्यः। तथा च

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वैदूर्यमणिनिर्मिते पात्रे श्रीखण्डेन्धनेन तिलपिष्टपाकवत्, मन्दारतूलोपलब्धये स्वर्णहलाग्रेण भूमिकर्षणवत्, घनसारशकलैः कोद्रवक्षेत्रवेदनवच्च कर्मक्षेत्रेऽत्र भारते सत्कर्मानुष्ठानं मन्दभाग्यताया निदर्शनं मन्तव्यम् । अतः श्रेयस्कामेन पुंसा सत्कर्मानुष्ठेयमिति भावः ।

भाषार्थ — जो अभागा आदमी इस सत्कर्म करने योग्य मर्त्यलोक को पाकर पुण्य कर्म नहीं करता, वह वैदूर्यमणि से बनी हुई बटुली में चन्दन की लकड़ी से तिल के दानों को पकाता है, आँक की जड़ (रुई) पाने के निमित्त सोने के हल की नोक (अग्रभाग) से पृथ्वी को जोतता है तथा कपूर के टुकड़े करके कोदों के खेत के चारों ओर बाड़ लगाता है । अर्थात् उस व्यक्ति को मूढ़ समझना चाहिए, जो इस दुर्लभ कर्मक्षेत्र मर्त्यलोक को प्राप्त करके भी उत्तम कर्म न करते हुए व्यर्थ के प्रयोजनों में हमेशा लगा रहता है । अतः सत्कर्म से विमुख होना मनुष्य की मूर्खता का परिचायक है ॥ १०० ॥

अथ कर्मवशाद् भाव्यं ध्रुवमेव भवति, नाभाव्यं कदापि सम्भवतीति सिद्धान्तयति—

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे
वाणिज्यं कृषिसेवने च सकला विद्याः कलाः शिक्षताम् ।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत् कृत्वा प्रयत्नं परं
नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः ? ॥ १०१ ॥

अन्वयः—(जनः) अम्भसि मज्जतु, मेरुशिखरं यातु, आहवे शत्रून् जयतु, वाणिज्यं कृषिसेवने सकलाः विद्याः कलाः च शिक्षताम्, परं प्रयत्नं कृत्वा खगवत् विपुलं आकाशं प्रयातु, (तथापि) इह अभाव्यं न भवति, कर्मवशतः भाव्यस्य (च) कुतः नाशः (भवति) ?

व्याख्या — जनः, अम्भसि=जले । मज्जतु=मग्नो भवतु, प्राणानवरुध्य स्तम्भनादिद्वारा कियत्कालं जलान्तस्तिष्ठतु नाम । मेरुशिखरं—मेरोः=सुमेरोः, शिखरं मेरुशिखरम्=मेरुपर्वतस्याग्रभागं, सुमेरुमूर्धानम् । यातु=गच्छतु, आरोहतु । आहवे=युद्धे । शत्रून्=रिपून् । जयतु=पराभावयतु । वाणिज्यं—वाणिजां कर्म वाणिज्यम्=क्रयविक्रयादिकं व्यवहारम् । कृषिसेवने—कृषिः=कर्षणं, सेवनं= परिचर्या दौत्यादिना । तथा च कृषेः सेवनमिति कृषिसेवनं, तस्मिन् कृषिसेवने । सकलाः=सर्वाः । विद्याः=वेदवेदाङ्गादयश्चतुर्दशसङ्ख्याकाः । च=अपि च सकलाः कलाः इतिहासागमप्रभृतीश्चतुःषष्टिसंख्याकाः । शिक्षताम्=अभ्यस्यतु ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तथा परम्=असाधारणम्। प्रयत्नम्=पादुकासिद्ध्यादिरूपमाकाशगमनादिकम् उद्योगम्। कृत्वा=विधाय। खगवत्=पक्षिवत्। विपुलम्=विशालम्, इयत्तापरिच्छिन्नपरिणामशून्यम्। आकाशम्=गगनम्। प्रयातु=गच्छतु। तथापि इह=संसारे। कर्मवशतः=पुण्यापुण्यकर्मानुरोधेन। अभाव्यम्—भवितुं शक्यं भाव्यं, न भाव्यमभाव्यम्=असम्भवम् अभावि फलं न भवति। तथा भाव्यस्य भवितुं शक्यस्य=सम्भवस्य अवश्यम्भाविनः। नाशः=अनुपलब्धिः निरोधः। कुतः=कथम्? भाव्यं भवत्येव तस्य ब्रह्मणापि निवारयितुमशक्यत्वादित्यर्थः।

भावार्थः—जलमज्जन-सुमेरुशिखरारोहण शत्रुविजय-वाणिज्य कृषिसेवन-विद्याकलाशिक्षण-गगनाधिरोहणादि-दुष्करकार्याणां विभिन्नैरुपायैः कथञ्चित् पुरुषप्रयत्नसाध्यत्वेऽपि तत्फलस्य प्राप्तेरप्राप्तेश्च कर्माधीनत्वेन तत्र पुंप्रयत्नस्य सर्वथाऽकिञ्चित्करत्वात् कर्मवशतः अस्मिन् लोके अभाव्यस्य फलस्य सर्वथाऽसम्भवः तथाऽवश्यम्भाविनः फलस्य निरोधः न कुतोऽपि भवितुमर्हति। अत एवोक्तं नीतिशास्त्रे—

'यद् भावि तद् भवत्येव यदभावि न तद् भवेत्।
भवितव्यं भवत्येव नारिकेलफलाम्बुवत्॥
गन्तव्यं गच्छति सदा गजभुक्तकपित्थवत्॥'

भाषार्थ—मनुष्य चाहे जल में गोता लगाये, सुमेरु पर्वत की चोटी पर चढ़ जाय, युद्ध में शत्रुओं को जीत ले, व्यापार, खेती, सेवा आदि करे, सम्पूर्ण विद्याओं तथा सारी कलाओं को सीख ले, अत्यन्त प्रयत्न करके पक्षियों की तरह विस्तृत आकाश में उड़कर चला जाए, फिर भी इस संसार में जो बात नहीं होने वाली है, वह हो नहीं सकती और जो कर्मवश होने वाली है, उसका नाश कैसे हो सकता है? अर्थात् अनहोनी बात कभी होती ही नहीं तथा होनी टल नहीं सकती। प्रारब्धवश से ही मनुष्य को सब कुछ प्राप्त होता है। जो कुछ प्राणी के भाग्य में नहीं लिखा है, उसे वह लाख जोखिम उठाने पर भी नहीं प्राप्त कर सकता है और जो कुछ उसके भाग्य में वदा है, उसे वह स्वतः ही प्राप्त कर लेता है॥ १०१॥

किं बहुना पुरातनसुकृतवशात् मानवस्य सर्वमप्यनुकूलमेव भवतीत्याह—

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं
सर्वो जनः स्वजनतामुपयाति तस्य।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य॥ १०२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—यस्य नरस्य विपुलं सुकृतमस्ति, तस्य भीमं वनं (अपि) प्रधानं पुरं भवति, तस्य सर्वः (अपि) जनः स्वजनताम् उपयाति, कृत्स्ना भूः च तस्य सन्निधिरत्नपूर्णा भवति।

व्याख्या—यस्य नरस्य=मनुष्यस्य। विपुलम्=बहुलम्। पूर्वसुकृतम्=पुरातनं सत्कर्म। अस्ति=विद्यते। तस्य=तादृशः पूर्वसुकृतशालिनो मानवस्य। भीमम्=भयङ्करम्। वनमपि=अरण्यमपि। प्रधानम्=मुख्यम्। पुरम्=नगरम्। भवति=राजधानीवदशेषभोगसाधनसमृद्धं सञ्जायते। तस्य=तादृशस्य नरस्य। सर्वोऽपि=अशेषोऽपि। जनः=लोकः। स्वजनताम्=स्वात्मीयताम्। उपयाति=प्राप्नोति। 'सर्वे जनाः सुजनतामुपयान्ति तस्य' इति पाठे तु सकला मनुष्याः सज्जना भवन्ति। तस्य=तथाभूतस्य। कृत्स्ना=चतुःसमुद्रान्ता सम्पूर्णा। भूः=पृथ्वी च। सन्निधिरत्नपूर्णा—सद्भिः=समीचीनैः, श्रेष्ठैः, निधिभिः=पद्मादिनिधानैः, रत्नैश्च=हीरकादिमणिभिश्च, पूर्णा=परिपूर्णा। भवति=जायते। अस्मिन् पद्ये वसन्ततिलकानामकमस्ति छन्दः।

भावार्थः—पूर्वसुकृतिर्धन्यो मानवः सिंहव्याघ्रादिघातुकजन्तुसङ्कुलत्वेनाति भीषणेऽरण्येऽपि उत्तमनगरवत् सकलसुखभोगसामग्रीं सम्पादयितुं क्षमते। तस्य समक्षेऽखिला अपि लोकाः सौजन्यभावं प्रकटयन्ति। समस्तरत्नपरिपूर्णा वसुन्धरा तस्य पुराकृतपुण्यवतः पुंसः कामधेनुरिव, कल्पलतेव, चिन्तामणिरिव मनीषितानशेषवस्तुविशेषान् प्रसूते इति भावः।

भाषार्थ—जिस पुरुष का पूर्वजन्मकृत पुण्य प्रबल है, उसके लिए भयङ्कर वन भी प्रधान नगर हो जाता है, सब लोग उसके सगे हो जाते हैं और सारी पृथ्वी उत्तम निधियों एवं रत्नों से परिपूर्ण हो जाती है। अर्थात् जिस भाग्यवान् पुरुष के प्राचीन संस्कार उत्तम होते हैं, उसके लिए सर्वत्र अनुकूलता होती है। अतः मनुष्य को हमेशा पुण्य का सञ्चय करना चाहिए, इसी में उसका कल्याण निहित है॥ १०२॥

अथेदानीं प्रश्नोत्तररूपेण लाभादीनां वास्तविकं स्वरूपमुपस्थापयति—

को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः।
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा काऽनुव्रता किं धनं
विद्या किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम्॥ १०३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—लाभः कः? गुणिसङ्गमः। असुखं किम्? प्राज्ञेतरैः (सह) सङ्गतिः। हानिः का? समयच्युतिः। निपुणता का? धर्मतत्त्वे रतिः। शूरः कः? विजितेन्द्रियः। प्रियतमा का? अनुव्रता। धनं किम्? विद्या। सुखं किम्? अप्रवासगमनम्। राज्यं किम्? आज्ञाफलम्।

व्याख्या—लाभः=प्राप्तः। कः=किन्नामधेयः? गुणिसङ्गमः—गुणिनां सङ्गमः गुणिसङ्गमः=दयादाक्षिण्यादि-सद्गुणशालिनां पुरुषपुङ्गवानां सङ्गतिः। असुखं—न सुखमसुखम्=सुखस्याभावः। किम्=किन्नामधेयम्? प्राज्ञेतरैः—प्राज्ञेभ्यः ये इतरे प्राज्ञेतराः, तैः प्राज्ञेतरैः=मूर्खैः सह। सङ्गतिः=सङ्गः। हानिः=क्षतिः। का=किन्नामधेयाः? समयच्युतिः—समयस्य च्युतिरिति समयच्युतिः=वृथाकालयापनम्। निपुणता—निपुणस्य भावो निपुणता=कुशलता, अभिज्ञता। का=किन्नामधेया? धर्मतत्त्वे—धर्मस्य तत्त्वं धर्मतत्त्वं, तस्मिन् धर्मतत्त्वे=धर्मरहस्ये। रतिः=प्रेम, अनुरागो वा। शूरः=वीरः। कः=कीदृशः? विजितेन्द्रियः—विजितानि इन्द्रियाणि येन स विजितेन्द्रियः=वशीकृतचित्तादिः। प्रियतमा—अतिशयेन प्रिया प्रियतमा=प्रेमानुरागिणी भार्या। का=कीदृशी? अनुव्रता—अनु=पत्युरनुकूलं, व्रतं=नियमो, यस्याः सा अनुव्रता=पत्यनुकूलगामिनी। धनम्=वित्तम्। किम्=किन्नामाख्यम्? अप्रवासगमनम्—प्रवासाय गमनं प्रवासगमनं, न प्रवासगमनमप्रवासगमनम्=परदेशगमनाभावः। राज्यम्=आधिपत्यम्। किम्=कीदृशम्? आज्ञाफलम्—आज्ञायाः फलं यस्मिन् तदाज्ञाफलम्=आदेशसाफल्यम्। अस्मिन्नपि पद्ये शार्दूलविक्रीडितनामकमस्ति वृत्तम्।

भावार्थः—विश्वस्मिन् स्वेच्छया स्वसौविध्यानुसारं मानवानामस्त्यनेकविधं कल्पितं लाभादिकं, परं नीतिशास्त्रानुसारं तु गुणिसङ्गमादय एव सन्ति वास्तविको लाभादिः। अतस्तस्यानुकूलाचरणमेवास्ति यथार्थं श्रेयस्करमिति भावः।

भाषार्थ—इस संसार में लाभ क्या है? गुणवानों का साथ। दुःख क्या है? मूर्खों का सङ्ग। हानि क्या है? समय की बरबादी। चतुरता क्या है? धर्म के रहस्य में अनुराग। वीर कौन है? इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाला पुरुष। प्यारी स्त्री कौन है? पति के अनुकूल आचरण करने वाली पतिव्रता स्त्री। धन क्या है? विद्या। सुख क्या है? परदेश में न जाना तथा राज्य क्या है? आज्ञा का पालन होना, आदेश की सफलता। अर्थात् इस प्रकार के आदर्श से प्राणियों का वास्तविक कल्याण होता है ॥ १०३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पृथिव्या अलङ्कारभूता मधुरभाषिण उत्तमचरित्राः सन्तः क्वचिदेवोपलभ्यन्ते न सर्वत्रेत्याह—

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनधनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः ।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा ॥ १०४ ॥

अन्वयः—अप्रियवचनदरिद्रैः, प्रियवचनधनाढ्यैः, स्वदारपरितुष्टैः, परपरिवादनिवृत्तैः सज्जनैः वसुधा क्वचित् क्वचित् मण्डिता (अस्ति) ।

व्याख्या—अप्रियवचनदरिद्रैः–न प्रियाणि अप्रियाणि, अप्रियाणि=असन्तोषकराणि, परुषाणि, मानसोद्वेगकराणि, यानि वचनानि=वाक्यानि, तैः दरिद्राः=रहिताः, इति अप्रियवचनदरिद्राः, तै=मधुरभाषिभिः । प्रियवचनधनाढ्यैः—प्रियाणि=सन्तोषकराणि, मधुराणि, यानि वचनानि इति प्रियवचनानि, तैः धनाढ्याः प्रियवचनधनाढ्याः, तैः प्रियवचनधनाढ्यैः । स्वदारपरितुष्टैः—स्वकीया दाराः स्वदाराः, तैः परितुष्टाः, स्वदारपरितुष्टाः, तैः स्वदारपरितुष्टैः =निजभार्यासन्तुष्टैः । परपरिवादनिवृत्तैः—परेषाम्=इतरेषां लोकानां, परिवादो=निन्दा, इति परपरिवादः; तस्मात् निवृत्ताः=दूरे स्थिताः, परपरिवादनिवृत्ताः, तैः परपरिवादनिवृत्तैः=अन्यनिन्दापराङ्मुखैः, एवम्भूतैः सज्जनैः । वसुधा—वसून् दधातीति वसुधा=पृथिवी । क्वचित् क्वचित्=कुत्रचन कुत्रचन विरले स्थले, न सर्वत्र । मण्डिता=अलङ्कृता अस्ति । अस्मिन् पद्येऽस्ति आर्यानामकं वृत्तम् ।

भावार्थः—अप्रियपरुषवचनपराङ्मुखा मधुरप्रियवचना निजभार्याऽनुरक्ता अन्यनिन्दानिवृत्ताः सत्पुरुषाः पृथिव्यामस्यां क्वचिदेवोपलभ्यन्त इति भावः ।

भाषार्थ—कटु वचन न बोलने वाले, मधुर वचनों के धनी, अपनी पत्नी में सन्तुष्ट रहने वाले एवं दूसरे की निन्दा से विमुख रहनेवाले सत्पुरुषों से यह पृथ्वी कहीं-कहीं सुशोभित है ॥ १०४ ॥

प्रकृत्या धीरस्य पुंसो धैर्यं न कथमपि दमयितुं शक्यमित्युदाहरणप्रदर्शनद्वारा स्पष्टयति—

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेर्न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम् ।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥१०५॥

अन्वयः—कदर्थितस्य अपि धैर्यवृत्तेः (पुरुषस्य) धैर्यगुणः हि प्रमार्ष्टुं न शक्यते । अधोमुखस्य कृतस्य अपि वह्नेः शिखा कदाचिद् एव अधः न याति ।

व्याख्या—कदर्थितस्य=क्लेशितस्य, दुर्दशाग्रस्तस्य । धैर्यवृत्तेः—धैर्येण वृत्तिर्यस्य स धैर्यवृत्तिः, तस्य धैर्यवृत्तेः=प्रकृत्या धीरस्य पुरुषस्य । धैर्यगुणः–धैर्यमेव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुण इति धैर्यगुणः=हृद्गतो धैर्यधर्मः। हि=निश्चयेन। प्रमार्ष्टुम्=नाशयितुम्। न शक्यते=न हि पार्यते। अधोमुखस्य—अधस्तात्=नीचैः, मुखं=वदनं, ज्वाला, यस्य सः अधोमुखः, तस्य अधोमुखस्य। कृतस्य=विहितस्य, अधोमुखतां नीतस्यापि। वह्नेः=अग्नेः। शिखा=ज्वाला। कदाचिदेव=कस्मिन्नपि समये। अधः=नीचैः। न याति=न गच्छति। पद्येऽत्रोपजातिवृत्तं विद्यते।

भावार्थः—यथा महता प्रयत्नेन कथञ्चित् क्षणमात्रम् अधोमुखतां नीतस्याप्यग्नेः ज्वाला न नीचैः प्रसर्पति, प्रत्युत स्वभावत एवोर्ध्वं प्रयाति। तथैव प्रकृत्या धीरस्य दैवात्कष्टां दशामुपगतस्यापि पुरुषस्य न कदापि धैर्यच्युतिः सम्भवतीति भावः।

भावार्थ—क्लेश दिये जाने पर भी धैर्यवान् पुरुष का धैर्यरूपी गुण किसी के द्वारा मिटाया नहीं जा सकता। नीचे की ओर मुख कर दिये जाने पर भी आग की ज्वाला-लपट कभी भी नीचे की ओर नहीं जाती, अपितु ऊपर की ही ओर उठती है। अर्थात् धीर पुरुष अपनी धीरता को कभी नहीं छोड़ता, चाहे उसके ऊपर आपत्तियों का पहाड़ ही क्यों न गिर जाय॥ १०५॥

लोकत्रयविजयिनो धीरपुरुषस्य परिभाषां प्रदर्शयितुमुपक्रमते—

कान्ताकटाक्षविशिखा न लुनन्ति यस्य
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै-
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः॥ १०६॥

अन्वयः—यस्य चित्तं कान्ताकटाक्षविशिखाः न लुनन्ति, कोपकृशानुतापः न निर्दहति, भूरिविषयाश्च लोभपाशैः न कर्षन्ति। स धीरः इदं कृत्स्नं लोकत्रयं जयति।

व्याख्या—यस्य—धीरस्य पुरुषस्य। चित्तम्=हृदयम्। कान्ताकटाक्षविशिखाः—कान्तायाः=कस्याश्चित्सुन्दर्या वनितायाः, कटाक्षा एव=नेत्रप्रान्तभागतः, साकूतानि विलोकनानि एव, विशिखा=वाणा, इति कान्ताकटाक्षविशिखाः=वनितानेत्रविलासबाणाः। न लुनन्ति=न छिन्दन्ति, न विध्यन्ति। कोपकृशानुतापः—कोप एव कृशानुः कोपकृशानुः, तस्य तापः कोपकृशानुतापः=क्रोधाग्निसन्तापः। न निर्दहति=नाधिकतया ज्वलति, सन्तापयति वा। भूरिविषयाः—भूरिणो विषया भूरिविषयाः=बहवः स्रक्चन्दनादयो भोग्यपदार्थाः। लोभपाशैः—लोभ एव पाशा लोभपाशाः, तैः लोभपाशैः=अत्यधिकाभिलाषबन्धनरज्जुभिः। न कर्षन्ति=स्वाभिमुखं न कुर्वन्ति। सः=उक्तलक्षणः। धीरः=

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धैर्यशील: पुरुष:। कृत्स्नम्=सकलम्। इदम्=एतत् दृश्यमानम्। जगत्=लोकम्। जयति=वशीकरोति। अस्मिन् श्लोके वसन्ततिलकाऽऽख्यं छन्दोऽस्ति।

भावार्थः—लोकेऽस्मिन् स एव धीरो मानवो कथयितुं शक्यते, यस्य गभीरे हृदये विश्वसुन्दर्यो नार्योऽपि ईषदपि कामविकारं नोत्पादयितुं समर्था: स्युः। अत एव तेन धीरेण त्रिलोकी विजेतुं शक्यते। अतो वनिताविजेता जगद्विजेतुं शक्नोतीति भाव:।

भाषार्थ—जिसके हृदय को सुन्दरी स्त्रियों के कटाक्षरूपी बाण विदीर्ण नहीं कर पाते, क्रोधरूपी अग्नि का सन्ताप जलाता नहीं है तथा अनेक प्रकार के विषय लोभ के फन्दों से खींचते नहीं, वह धैर्यवान् पुरुष इन तीनों लोकों को जीत लेता है। अर्थात् जिसका मन विषय-वासनाओं से चञ्चल नहीं होता, वह धीर पुरुष त्रिलोकी को विजय करने में समर्थ माना जाता है। अत: मनुष्यों को क्रोध का परित्याग तथा स्त्रियों के मोहपाश से सदा बचकर ही रहना चाहिए। इसी में उसका कल्याण है॥ १०६॥

विश्वस्मिन्नस्मिन् वीरपुरुष: सकलानपि दमयितुं शक्नोतीति सूर्योदाहरण-द्वारा निश्चिनोति—

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम्।
क्रियते भास्करेणैव स्फारस्फुरिततेजसा॥ १०७॥

अन्वयः—हि स्फारस्फुरिततेजसा भास्करेण एव एकेन शूरेण अपि महीतलं पादाक्रान्तं क्रियते।

व्याख्या—हि=नि:सन्देहम्। स्फारस्फुरिततेजसा—स्फारं स्फुरितं तेजो यस्य स स्फारस्फुरिततेजा:, तेन स्फारस्फुरिततेजसा=बहुलविकसितप्रकाशेन। भास्करेण—भा: करोतीति भास्कर:, तेन भास्करेण=दीप्तिमता सूर्येण। इव=यथा। एकेन=अद्वितीयेन। शूरेण=वीरेण, पराक्रमशीलेन पुंसा। महीतलं—मह्या:=पृथिव्या:, तलं=पृष्ठं, यस्य तत् महीतलम्=भूपृष्ठम्, भूमिष्ठलोकसमूह:। पादाक्रान्तम्—पादै: आक्रान्तं पादाक्रान्तम्=किरणव्याप्तम्। क्रियते=विधीयते। अस्मिन् श्लोके अनुष्टुप्छन्दो विद्यते।

भावार्थः—यथा प्रकाशेन देदीप्यमानो भगवान् भास्कर: स्वरश्मिभि: समस्तां वसुधां व्याप्नोति, तथैव कोऽपि प्रभावशाली वीरपुरुष: सकलं लोकं पद्भ्यामाक्रम्य तिष्ठति। शूरो हि पुमान् स्वकीयेन शौर्येण सर्वं विजित्य नैजं स्वामित्वं स्थापयतीति भाव:।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

 Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भाषार्थ—जिस प्रकार अत्यन्त प्रदीप्त तेजवाले भगवान् सूर्य अपनी किरणों के द्वारा पूरी पृथ्वी को आक्रान्त कर लेते हैं, उसी प्रकार केवल एक ही शूरवीर पुरुष समस्त महीतल को स्वाधीन कर अपने वश में कर सकता है ॥ १०७ ॥

अथ शीलबलेन मानवोऽद्भुतानि कार्याणि कर्तुं प्रभवतीति स्पष्टयति—

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणा-
न्मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते ।
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ॥ १०८ ॥

अन्वयः—यस्य अङ्गे अखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति तस्य (पुरः) वह्निः जलायते, जलनिधिः तत्क्षणात् कुल्यायते, मेरुः स्वल्पशिलायते, मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते, व्यालः माल्यगुणायते, (तथा) विषरसः पीयूषवर्षायते ।

व्याख्या—यस्य=पुरुषस्य । अङ्गे=शरीरे । अखिललोकवल्लभतमं–अखिलानां लोकानां वल्लभतममिति अखिललोकवल्लभतमम्=निखिलजनातिप्रियम् । शीलम्=सद्वृत्तं स्वभावः, सदाचारविशेषो वा । समुन्मीलति=आकारेङ्गितादिभिः सर्वतः प्रकाशते । तस्य=तादृशस्य पुरः । वह्निः=पावकः । जलायते—जलमिवाचरतीति जलायते=पानीयमिव शीतलो भवति । जलनिधिः—जलानां निधिः जलनिधिः=समुद्रः । तत्क्षणात्=तत्कालम् । कुल्यायते–'कुल्याऽल्पा कृत्रिमा सरित्' । कुल्या इवाचरतीति कुल्यायते=स्वल्पा नदी भवति । मेरुः =सुमेरुपर्वतः । स्वल्पशिलायते—स्वल्पा शिला स्वल्पशिला, तद्वदाचरतीति स्वल्पशिलायते=अमहत्परिमाणलघुपाषाण इव जायते । मृगाणां पतिः मृगपतिः=मृगराजः सिंहः । सद्यः=तस्मिन्नेव क्षणे । कुरङ्गायते—कुरङ्ग इवाचरतीति कुरङ्गायते=मृग इव भवति । व्यालः=सर्पः । माल्यगुणायते—मालैव माल्यं, माल्यस्य गुणः माल्यगुणः, स इवाचरतीति माल्यगुणायते=मालास्रगिव भवति । विषरसः=गरलद्रवः । पीयूषवर्षायते=पीयूषस्य वर्षा पीयूषवर्षा, सा इवाचरतीति पीयूषवर्षायते=अमृतवृष्टिरिव जायते । अस्मिन् पद्ये शार्दूलविक्रीडितनामकं वृत्तं वर्तते ।

भावार्थः—लोके हि शीलवान् पुरुषः परेषां प्रकृतिगुणं स्वरूपं च परावर्त्य सर्वं स्वानुकूलं सम्पादयितुं शक्नोति । शीलवतः समक्षे पावकः पानीयमिव, सागरः सरिदिव, सुमेरुः स्वल्पशिलेव, मृगपतिः मृग इव, सर्पः स्रगिव, गरलद्रवः सुधारस इव सञ्जायत इति भावः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—जिस पुरुष के शरीर में सर्वप्रिय शील विराजमान है, उसके लिए आग पानी के समान, समुद्र सोते के समान, सुमेरु पर्वत तत्काल छोटी चट्टान के समान, शेर हरिण के समान, साँप माला की डोरी के समान तथा विषरस अमृत की वर्षा के समान बन जाता है। अर्थात् शीलवान् पुरुष विषम से विषम परिस्थितियों को भी सुगमता से पार कर जाता है। अपने सदाचार के द्वारा सबको प्रसन्न करके शीलवान् पुरुष असम्भव भी कार्य सम्भव कर लेता है ॥ १०८ ॥

अथेदानीं सत्यव्रतिनः तेजस्विनः प्राणपणेनापि स्वकीयां प्रतिज्ञां पालयन्तीत्याह—

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम् ।
तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥ १०९ ॥

अन्वयः—सत्यव्रतव्यसनिनः तेजस्विनः असून् अपि सुखं सन्त्यजन्ति, (किन्तु) लज्जागुणौघजननीम् अत्यन्तशुद्धहृदयाम् अनुवर्तमानां स्वां जननीम् इव प्रतिज्ञां पुनः न (सन्त्यजन्ति)।

व्याख्या—सत्यव्रतव्यसनिनः—सत्यं व्रतं व्यसनं येषामस्ति ते सत्यव्रतव्यसनिनः, यद्वा सत्यव्रते व्यसनं येषामस्ति ते सत्यव्रतव्यसनिनः=सत्यभाषणस्वभावाः। तेजस्विनः—तेजोऽस्ति येषु ते तेजस्विनः=प्रभावशालिनो महामानवाः। असून्=प्राणान् अपि। सुखम्=सुखपूर्वकम्। सन्त्यजन्ति=उत्सृजन्ति। लज्जागुणौघजननीम्—लज्जागुणानाम् ओघः लज्जागुणौघः, तस्य जननी लज्जागुणौघजननी, तां लज्जागुणौघजननीम्=लज्जादिगुणोत्पादयित्रीम्। अत्यन्तशुद्धहृदयाम्—अत्यन्तं शुद्धं हृदयं यस्याः सा अत्यन्तशुद्धहृदया, ताम् अत्यन्तशुद्धहृदयाम्=अतिस्वच्छान्तःकरणाम्। अनुवर्तमानाम्—अनु=पश्चाद्, वर्तते इत्यनुवर्तमाना, ताम् अनुवर्तमानाम्=रक्षकरूपेणानुसरन्तीम्। एतादृशगुणशालिनीम्। स्वाम्=स्वीयाम्। जननीमिव=मातरमिव, प्रतिज्ञाम्=स्वीकृतविषयम्, पुनः तु न सन्त्यजन्ति। पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलका नाम वृत्तम्।

भावार्थः—सत्यपालनपरायणाः प्रभावशालिनो महापुरुषाः क्लेशं विस्मृत्य सुखपूर्वकं कामं प्राणान् परित्यक्तुं सन्नह्यन्ते, परं सदाचारं शिक्षयन्तीं पालनपरायणां निष्कपटहृदयां सकलगुणशालिनीं निजां मातरमिव सङ्कोचभावोत्पा-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिकां विशुद्धभावां प्रतिज्ञां न त्यजन्ति। यतो हि प्रतिज्ञापालनं तेषामस्ति मुख्यं कार्यमिति भावः।

इति योगिराजनृपति-भर्तृहरिविरचिते नीतिशतके पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिना कृता अन्वय-व्याख्या-भावार्थाः समाप्ताः।

भाषार्थ—सत्यव्रत के व्यसनी तेजस्वी पुरुष अपने प्राणों को भी सहज में छोड़ सकते हैं, किन्तु लज्जा, सङ्कोच आदि गुण-समुदाय को उत्पन्न करने वाली अत्यन्त शुद्धहृदया तथा अनुकूल आचरण करने वाली माता के समान प्रतिज्ञा को कभी नहीं छोड़ सकते। अर्थात् दृढप्रतिज्ञ महापुरुष के प्राण भले ही चले जायें, वह एक बार की हुई प्रतिज्ञा से कभी पराङ्मुख नहीं होते। तेजस्वी मनुष्य प्रतिज्ञा भंग करने की अपेक्षा प्राणत्याग करने को श्रेष्ठ समझते हैं॥ १०९॥

इस प्रकार योगिराज राजा भर्तृहरिकृत नीतिशतक की पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी द्वारा सम्पादित हिन्दीव्याख्या समाप्त।

युग्म-त्रि-व्योमनेत्राब्दे वैक्रमीये शुभङ्करे।
श्रावणे शुक्लपञ्चम्यां तिथौ मङ्गलवासरे॥
त्रिपाठ्युपाह्व-श्रीकृष्णमणिना विमलासुधे।
सान्वये नीतिशतके व्याख्ये द्वे विहिते शुभे॥

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No.......8384.........

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकपादाः	श्लोकाङ्काः
अकरुणत्व०	५२
अज्ञः सुखमा०	३
अधिगतपरमा०	१७
अप्रियवचन०	१०४
अम्भोजिनी०	१८
असन्तो नाभ्यर्थ्याः०	२८
आज्ञा कीर्तिः०	४८
आरम्भगुर्वी०	६०
आलस्यं हि०	८६
इतः स्वपिति०	७७
उद्भासिता०	५९
एकेनापि०	१०७
एके सत्पुरुषाः०	७५
एको देवः०	६९
ऐश्वर्यस्य०	८३
कदर्थितस्यापि०	१०५
करे श्लाघ्यस्त्यागः०	६५
कर्मायत्तं०	८९
कान्ताकटाक्ष०	१०६
किं तेन हेम०	८०
कुसुमस्तबक०	३३
कृमिकुलचित्तं	९
केयूरा न०	१९
को लाभो गुणि०	१०३
क्वचित्पृथ्वी०	८२
क्षान्तिश्चेत्०	२१
क्षीरेणात्मगतो०	७६
क्षुत्क्षामोऽपि०	२९
खल्वाटो दिवसे०	९०
गजभुजङ्गमयोः०	९१
गुणवदगुणवद्वा०	९९
छिन्नोऽपि०	८७
जयन्ति ते०	२४
जाड्यं धियो०	२३
जाड्यं ह्रीमति०	५४
जातिर्यातु०	३९
तानीन्द्रियाणि०	४०
तृष्णां छिन्धि०	७८
त्वमेव चातका०	५०
दानं भोगो०	४३
दाक्षिण्यं स्वजने०	२२
दिक्कालाद्य०	१
दुर्जनः परि०	५३
दौर्मन्त्र्यान्नृप०	४२
न कश्चिच्चण्ड०	५७
नमस्यामो०	९४
नम्रत्वेनोन्नमन्तः०	७०
निन्दन्तु नीति०	८४
नेता यस्य०	८८
नैवाकृति०	९६
पत्रं नैव०	९३
पद्माकरं	७४
परिक्षीणः०	४५
परिवर्तिनि०	३२
पापान्निवारयति०	७३
प्रदानं प्रच्छन्नं०	६४
प्रसह्य मणि०	४
प्राणाघाता०	२६
प्रारभ्यते०	२७
बोद्धारो मत्सर०	२
ब्रह्मा येन०	९५
भग्नाशस्या०	८५
भवन्ति नम्राः०	७१
भीमं वनं०	१०२
मज्जत्वम्भसि०	१०१
मणिः शाणो०	४४
मनसि वचसि०	७९
मृगमीन०	६१
मौनान्मूकः०	५८
यदचेतनोऽपि०	३७
यदा किञ्चिज्ज्ञो०	८
यद्धात्रा निज०	४९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्लोकपादाः	श्लोकाङ्काः
यः प्रीणयेत्सुचरितैः०	६८
यस्यास्ति वित्तं०	४१
सा साधूंश्च	९८
येषां न विद्या०	१३
रत्नैर्महार्हैं०	८१
राजन्दुधुक्षसि०	४६
रे रे चातक०	५१
लज्जागुणौघ०	१०९
लभेत सिकतासु०	५
लाङ्गूलचालन०	३१
लोभश्चेदगुणेन०	५५
वने रणे०	९७
वह्निस्तस्य०	१०८
वरं पक्षच्छेदः०	३६
वरं पर्वत०	१०
वहति भुवन०	३५
वाञ्छा सज्जन०	६२
विद्या नाम नरस्य०	२०
विपदि धैर्यं०	६३
व्यालं बाल०	६
शक्यो वारयितुं०	११
शशी दिवस०	५६
शास्त्रोपस्कृत०	१५
शिरःशार्वं०	१०
श्रोत्रं श्रुतेनैव	७२
सत्यानुता च०	४७
सन्तप्तायसि०	६७
सन्त्यन्येऽपि०	३४
सम्पत्सु महतां०	६६
साहित्य-सङ्गीत०	१२
सिंहः शिशुरपि०	३८
सूनुः सच्चरितः०	२५
सृजति तावद०	९२
स्थाल्यां वैदूर्य्यं०	१००
स्वल्प-स्नायुवसा०	३०
स्वायत्तमेकान्त०	७
हर्तुर्याति०	१६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कतिपय परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरात्मक ग्रन्थ

साहित्यदर्पणालोकः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री रामजी लाल शर्मा		२०—००
काव्यप्रकाश-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्रीरामजी लाल शर्मा		२०—००
चन्द्रालोक-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । मानवल्ली तथा वेताल		२०—००
शिशुपालवध-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) १—४सर्ग । अशोकचन्द्र गौड		२०—००
सांख्यकारिकादर्शः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी		१०—००
अलङ्कारशास्त्रस्येतिहासः (प्रश्नोत्तरात्मकः) श्रीपरमेश्वरदीन पाण्डेय		१०—००
नलचम्पू-रहस्यम्(प्रश्नोत्तरात्मकः)१—५उच्छ्वास । परमेश्वरदीनपाण्डेय		१२—५०
वेदान्तसार-प्रदीपः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्रीराजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी		१०—००
मध्यसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका (प्रश्नोत्तरात्मकः) विजयमित्र शास्त्री		४०—००
मृच्छकटिक-सोपानम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा		१५—००
वेणीसंहार-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) श्री परमेश्वरदीन पाण्डेय		१२—५०
नैषध-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) १—५ सर्ग । श्री रमाशंकर मिश्र		२५—००
दशरूपक-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) श्री त्रिलोकीनाथ द्विवेदी		१५—००
सारसिद्धान्तकौमुदी । 'राका'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्यासहित । व्याख्याकार— लोकमणि दाहाल । १—४ भाग । प्रत्येक भाग		१५—००
भारतीय-संस्कृतिः । लोकमणि दाहाल		१५—००
संस्कृतभाषाविज्ञानम् । डॉ० शिवप्रसाद द्विवेदी		२०—००
चन्द्रकलानाटिका-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) श्रीपरमेश्वरदीन पाण्डेय		७—५०
संस्कृतसाहित्येतिहासः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री परमानन्द शास्त्री		१२—५०
रसगङ्गाधर-हृदयम् । (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री ज्ञानचन्द्र त्यागी		२०—००
लघुसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका (प्रश्नोत्तरात्मकः) विजयमित्र शास्त्री		२५—००
कादम्बरी-कलाप्रकाशः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा		२०—००
लघुमञ्जूषारहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । स्वामी रामेश्वर पुरी		१०—००
शाकुन्तलरहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । त्रिलोकीनाथ द्विवेदी		२०—००
मेघदूत-तत्त्वालोकः (प्रश्नोत्तरात्मकः) डॉ० अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री		१२—५०
महाभाष्यनवाह्निकालोचनम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) विजयमित्र शास्त्री		१६—००
मुक्तावली-प्रकाशः (न्यायसिद्धान्तमुक्तावली-प्रश्नोत्तरी) । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी		२०—००
औचित्यविचारचर्चा-मञ्जरी (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा		१२—५०
वक्रोक्तिजीवितम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) डॉ० नरेश झा		७—५०
भारतीयसंस्कृति-सोपानम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) डॉ० शिवप्रसाद द्विवेदी		१२—००

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi